महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

*विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।*

वर्ष : ६३ अंक : ०६
दयानन्दाब्द: १९७
विक्रम संवत्: फाल्गुन शुक्ल २०७७
कलि संवत्: ५१२१
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२१

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९/५९

i jkidkjh

मार्च द्वितीय २०२१

अनुक्रम

०१. वैदिक राज्यव्यस्था की उपेक्षा करके...	सम्पादकीय	०४
०२. अग्नि सूक्त-०१ भूमिका	डॉ. धर्मवीर	०८
०३. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		१०
०४. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	११
०५. मृत्यु और जन्म के बीच की गति	जगदेवसिंह सिद्धान्ती	१६
०६. आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय...	ओमप्रकाश आर्य	२१
०७. स्थापना-दिवस-२०२१	कन्हैयालाल आर्य	२७
०८. इजराईली इतिहासकार द्वारा महर्षि...	वेदप्रकाश आर्य	२८
०९. संस्था समाचार	ब्र. रोहित	३०
१०. संस्था की ओर से...		३१
११. 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

वैदिक राज्यव्यस्था की उपेक्षा करके हमने क्या पाया ?-(२)

[गतांक से आगे]

अधिकांश राजा, राजा होने के साथ ऋषि थे और ऋषितुल्य तपस्वी, निर्लिप्त, अध्ययनपरायण और आध्यात्मिक जीवन जीते थे। इसी कारण उन्हें **'राजर्षि'** कहा जाता था। आज की तरह जर्जरशरीरी होकर भी कुर्सी से चिपके रहकर मरना उनका लक्ष्य नहीं होता था, वानप्रस्थकाल आते ही पुत्र को राज्य सौंप राजा-रानी वन में चले जाते थे और तपस्या एवं साधनामय जीवन बिताते थे। मिथिला के राजर्षि जनक राजा होते हुए निर्लिप्त जीवन बिताते थे, वेद-वेदांगों के अध्ययन और ब्रह्मोपासना में लीन रहते थे। प्रजावत्सल और मर्यादापुरुषोत्तम राम प्रजा के हितसाधन में तत्पर रहते थे। इसी कारण इतिहास में उनके आदर्श राज्य को **'रामराज्य'** के रूप में स्मरण किया जाता है। केकयराज अश्वपति ब्रह्मविद्या के विशेषज्ञ थे। छान्दोग्य उपनिषद् में आया है कि प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जन और वुडिल नामक पाँच ब्रह्मजिज्ञासु समृद्ध गृहस्थ उनके पास ब्रह्मविद्या पर विचार-विमर्श करने जाते हैं। सम्राट् अश्वपति उनसे रात्रिनिवास और भोजनग्रहण करने का अनुरोध करता है। वे इन बातों में इसलिए रुचि नहीं लेते कि भूल से राजा द्वारा अन्याय, अधर्म हो जाता है। ऐसे राजा का अन्न भी पापकारक होता है। उनके मनोभावों को भाँपकर राजा अश्वपति गौरव के साथ घोषणा करता है कि मेरा अन्न खाने में कोई दोष नहीं है, क्योंकि

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

(५.११.५)

'हे ब्रह्मवेत्ताओं! मेरे राज्य में कोई चोर डाकू नहीं है, न कोई अदानी है, न शराबी है, न कोई यज्ञानुष्ठान से रहित है। मेरे राज्य में कोई परस्त्रीगामी पुरुष नहीं है, फिर परपुरुषगामी स्त्री कैसे होगी?' इसलिए आप निःशंक होकर भोजन ग्रहण कीजिए।

एक और उदाहरण उल्लेखनीय मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के पिता राजा दशरथ का। उनके शासन की विशेषताओं का वर्णन करते हुए रामायण में महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं

नानाहिताग्निः नायज्वा न शूद्रो वा न तस्करः।
कश्चिदासीद् अयोध्यायां न चावृत्तो न संकरः।।

(बाल. ६.१२)

अर्थात्- ''महाराजा दशरथ के राज्य में ऐसा कोई नहीं था जो प्रतिदिन अग्निहोत्र न करता हो, जो बृहद् यज्ञ न करता हो, जो दरिद्र, चोर, सदाचारहीन हो और जो वर्णव्यवस्था की मर्यादाओं का उल्लंघन करता हो।''

मध्यकाल में सम्राट् अशोक भी एक उदाहरण-पुरुष हुए हैं। वे अपने जीवन के उत्तरवर्ती काल में राजा होते हुए भी एक भिक्षु का जीवन जीते थे। राज्य के सुख-ऐश्वर्य का उपभोग नहीं करते थे। वेशपरिवर्तन करके प्रजा में स्वयं घूम-घूमकर उनके दुःखों-असुविधाओं की जानकारी लेकर उन्हें दूर करते थे।

आज के लोग इन आदर्शों पर विश्वास नहीं कर पाते। वे इन्हें अतिशयोक्ति और गर्वोक्ति कहकर इनकी सत्यता को झुठलाना चाहते हैं। हमारे संस्कार इतने संकीर्ण, स्वार्थमय, तामसिक और राजसिक हो चुके हैं कि हमें वे उदात्त आदर्श सम्भव ही नहीं लगते। जैसे किसी विलासिता में आकण्ठ डूबे व्यक्ति को ब्रह्मचर्यजीवन जीना, मद्यपायी को मद्यरहित जीवन जीना, भ्रष्टाचारी को रिश्वतरहित रहना, स्वेच्छाचारी को पतिव्रत और पत्नीव्रत निभाना सम्भव नहीं लगते, उसी प्रकार आज के उदात्त मूल्यों से रहित परिवेश में जीने वालों को प्राचीन आदर्श सम्भव नहीं लगते। यही कारण है कि आज विश्व का कोई शासक सम्राट् अश्वपति जैसी महती घोषणा नहीं कर सकता। कोई राजनीतिज्ञ राम के 'प्राण जाये पर वचन न जाये' के आदर्श को सोच भी नहीं सकता। किन्तु, कुछ महान् आत्माएँ अर्वाचीन युग में भी भारत में पैदा होती रही हैं जिन्होंने यहाँ की आदर्श-परम्परा को जीवित रखा और सम्भव सिद्ध किया है। वीरशिरोमणि छत्रपति शिवाजी के समक्ष जब सुन्दरी मुस्लिम वधू को महल में रखने के लिए लाया गया तो उन्होंने उसको भोग्या के रूप में नहीं, माता के रूप

में देखा और आदेश दिया कि इसे सम्मानपूर्वक इसके घर पहुँचा दिया जाये। दूसरी ओर उसी काल में मुसलमान बादशाह चुन-चुनकर हिन्दू सुन्दरियों को बलात् महलों में रखते थे और उनकी इज्जत लूटते थे। हीन संस्कारी लोगों को कभी आर्यआदर्श सम्भव कैसे लग सकते हैं? उनके लिए तो उदात्त संस्कार, उदात्त आत्मा और उदात्त आचरण चाहिए। यही सर्वतोमुखी उदात्तता वैदिक संस्कृति सभ्यता की विशेषता थी। राजा से उसी उदात्त आचरण की अपेक्षा की जाती थी।

वैदिक राज्यव्यवस्था में प्रजातन्त्र शासन भी था (जैसे अम्बष्ठ गणतन्त्र), किन्तु अधिकार तन्त्र नहीं था; वह लोकतन्त्र और राजतन्त्र का मध्यमार्गी रूप था। राजा के पुत्र का जब युवराज अथवा राजा के पद पर अभिषेक होना होता था, उससे पूर्व राजसभा से, पुरोहितों से और अधीन राजाओं से, प्रजा-प्रतिनिधियों से अनुमति लेनी आवश्यक थी। सहमति-अनुमति के बिना राजतिलक नहीं हो सकता था। वैदिक राजतन्त्र में चुने हुए प्रतिनिधि, जिसमें प्रजा के भी प्रतिनिधि होते थे, राजा का चयन करते थे, जबकि लोकतन्त्र में भी जनता के चुने हुए प्रतिनिधि देश के शासक (प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति) और प्रदेश के शासक (मुख्यमन्त्री) का चयन करते हैं। अन्तर यह है कि कर्त्तव्यविमुख राजा को '**राजकर्त्तारः**' और प्रजा कभी भी पदच्युत कर सकते थे जबकि लोकतन्त्र में उसे हटाने के लिए पाँच वर्ष पश्चात् आने वाले चुनाव की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। तब तक वे कितना ही धनसंचय करें, कितना ही शासकीय धन का दुरुपयोग करें, कितने ही ठाठ-बाट करें, जनता का कोई वश नहीं चलता।

अब बात करते हैं न्यायव्यवस्था और दण्डव्यवस्था की। वैदिककालीन न्यायव्यवस्था अधिक न्यायपूर्ण, पक्षपातरहित, पारदर्शी, जटिलतारहित, व्यावहारिक, श्रेष्ठप्रभावकारी, शीघ्रकारी, तर्कसंगत और मनोवैज्ञानिक थी। वह यथायोग्य दण्डव्यवस्था थी। आज की व्यवस्था यथाकानून दण्डव्यवस्था है। वैदिक न्याय या दण्डव्यवस्था के तीन आधारभूत तत्त्व थे- १. बौद्धिक स्तर या शिक्षा स्तर, २. सामाजिक स्तर या पद, ३. अपराध की प्रकृति और प्रभाव। यदि व्यक्ति उच्च शिक्षित है तो वह निश्चित रूप से अपराध के गुण-दोष और प्रभाव के ज्ञान में अधिक विवेकशील है। यदि कोई उच्च पद पर है और उच्च वर्ण एवं उच्च सामाजिक स्तर वाला है तो उसके अपराध का दुष्प्रभाव भी समाज पर उतना ही अधिक पड़ेगा। इसी प्रकार अपराध की गम्भीरता और उससे समाज या राष्ट्र पर पड़नेवाला दुष्प्रभाव है। ये जहाँ अधिक हैं वहाँ दण्ड भी अधिक है, जहाँ न्यून हैं वहाँ दण्ड भी न्यून है। दण्डव्यवस्था का उद्देश्य होता है- बुराइयों को रोकना, बुरों को सुधारना, समाज में सुख, शान्ति, न्याय और व्यवस्था बनाये रखना। यह न्यायोचित ही है कि इन बिन्दुओं पर जिसका जितना दुष्प्रभाव पड़ता है उतना ही उसको हानिकारक माना जाना चाहिए और उसको तदनुसार दण्ड देना ही न्यायपूर्ण दण्डव्यवस्था कही जानी चाहिए।

वैदिककालीन समाज में वर्ण-व्यवस्था थी, जो गुण, कर्म, योग्यता पर आधारित थी, जन्म से नहीं। उच्च गुण, कर्म, योग्यता वाले व्यक्ति ब्राह्मण कहलाते थे, फिर क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे। इसी गुण-कर्म-योग्यता के अनुसार समाज में इनका अधिक सम्मान और प्रभाव था। राजा राष्ट्रप्रमुख था, अतः उसका सम्मान और प्रभाव सर्वाधिक था। यदि ये अपराध करते हैं तो निर्विवाद रूप में उस अपराध का बुरा प्रभाव भी उच्चता के अनुसार अधिक और व्यापक होगा। उससे उतना ही अधिक सामाजिक व्यवस्था को आघात पहुँचेगा। अतः यह न्यायोचित है कि उसे उतना ही अधिक दण्ड दिया जाये। कम दण्ड उस पर प्रभावकारी सिद्ध नहीं होगा। इसी न्यायसिद्धान्त के अनुसार मनुस्मृति में दण्डनिर्णय करते हुए कहा गया है कि एक प्रकार के अपराध में जहाँ शूद्र को आठ गुणा दण्ड मिलता है तो वहाँ वैश्य को सोलह गुणा (दुगुना), क्षत्रिय को बत्तीस गुणा (तिगुना), ब्राह्मण को चौंसठ गुणा (आठ गुणा) अथवा सौ गुणा (दस गुणा) अथवा एक सौ अठाईस गुणा (सोलह गुणा) और राजा को एक हजार गुणा दण्ड मिलना चाहिए (८.३३५-३४७)। यह भी निर्देश है कि अपराध करने पर राजा, आचार्य, माता, पिता, मित्र, पुरोहित कोई भी क्षम्य नहीं होना चाहिए और यदि कोई शारीरिक दण्ड के बदले धन देकर छूटना चाहे तो उसको नहीं छोड़ना चाहिए। कितनी न्यायपूर्ण

और मनोवैज्ञानिक व्यवस्था है!!

वैदिक कालीन राज्यव्यवस्था में राजा कुल परम्परागत होने लगा था, यद्यपि ऐसा अपरिहार्य नहीं था। ऐतरेय ब्राह्मण (९.२३) में उल्लेख है कि राजपरिवार का न होते हुए भी जनंतपुत्र अत्यराति चक्रवर्ती राजा बना था और उस समय सात्यहव्य वासिष्ठ ने उसका अश्वमेध यज्ञ कराया था। कुल परम्परागत होते हुए भी राजा स्वेच्छाचारी और निरंकुश नहीं था। वह न तो यूरोपीय व्यवस्था का 'किंग' था और न इस्लामी व्यवस्था का 'बादशाह'। वह राज्य का मुखिया अथवा सभाध्यक्ष होता था। उसे राजसभा, धर्मसभा और न्यायसभा के अधीन रहकर राज्य संचालन करना होता था। अपने कर्त्तव्यों का ठीक से निर्वहण न कर सकनेवाले राजा को या तो राजसभा पदभ्रष्ट कर देती थी या प्रजा के दबाव में स्वयं पद छोड़ना पड़ जाता था। सम्राट् सगर के अन्यायी पुत्र असमंजस् को राज्याधिकार से वंचित होकर राज्य से निष्कासित होने का दण्ड भोगना पड़ा था। सत्यव्रत त्रिशंकु को दुर्व्यवहारी होने के कारण राज्यभ्रष्ट होना पड़ा था। ये दोनों अयोध्या के राजा थे। हस्तिनापुर के राजाओं में पारीक्षित जनमेजय (द्वितीय) को ब्रह्महत्या करने या कराने के फलस्वरूप पदच्युत होना पड़ा था। वह प्रायश्चित करने के उपरान्त पुनः राजगद्दी पर बैठा। अभिमन्यु के पौत्र जनमेय (तृतीय) के साथ भी एक बार ऐसा ही हुआ। आर्यों के धार्मिक ग्रन्थ यजुर्वेद में विकृतियों का पक्ष लेने के कारण जनता में उसके प्रति इतना आक्रोश उमड़ा कि उसे भागकर वन में शरण लेनी पड़ी। किसी प्रकार जब विवाद शान्त हुआ तो महर्षि याज्ञवल्क्य के आश्रय से उसका पुनः अश्वमेध-अनुष्ठान हुआ और राजसिंहासन पर बैठा। देवों के राजा इन्द्र ने निर्दोष त्रिशिरा का वध कर दिया। प्रजा-विद्रोह के कारण उसे भागकर वन में छिपना पड़ा था। प्रायश्चित्त करने पर पुनः राज्यासीन हुआ। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें राजा को किसी अपराध के कारण दण्डित अथवा पदभ्रष्ट होना पड़ा था। इस प्रकार राजा, राजकुमार आदि को भी न्यायसभा या प्रजा दण्ड देती थी।

आज की व्यवस्था में मूल विरोध तो यही है कि सम्मान व्यवस्था तो उच्च, ऐश्वर्यपूर्ण व सुविधापूर्ण है और दण्डव्यवस्था समान है, क्योंकि जो उच्च व्यक्ति योग्यता का या पद का सुविधा-फल तो सामान्य व्यक्ति अधिक प्राप्त करता है किन्तु दण्ड के समय जब अयोग्यता, अपराध की फलप्राप्ति का जब अवसर आता है तो वह सामान्य व्यक्ति के समान मान लिया जाता है। जो व्यक्ति ऊंचे पद पर है, जिसका सामाजिक और बौद्धिक स्तर अधिक है, उसका उतना अधिक सम्मान, प्रभाव व परिचय है। वह उतना ही अधिक सुख-सुविधा का उपभोग करता है। स्पष्ट है कि यदि वह अपराध या भूल करेगा तो उसका समाज पर दुष्प्रभाव भी उतना ही अधिक और गम्भीर होगा। जो मजदूर जैसा सामान्य व्यक्ति है उसका बौद्धिक स्तर, सम्मान, प्रभाव व परिचय भी सामान्य होता है। उसके अपराध का समाज पर नगण्य प्रभाव होगा। वस्तुतः न्याय-विरोध तो यह है कि उनका सुख-सुविधा-सम्मान स्तर अधिक है और दण्डस्तर एक जैसा है। अपितु पक्षपातपूर्ण ढंग से पृथक् है। सामान्य व्यक्ति को जेल में सामान्य सुविधाएँ मिलती हैं जबकि विशेष को 'बी' या 'ए' श्रेणी की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यह दण्डव्यवस्था विपरीत और अमनोवैज्ञानिक है। समाज में हम प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं कि राजन्य और उच्चवर्ग का समाज के निम्न वर्ग पर जितना मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है उसकी तुलना में निम्न वर्ग का निम्न वर्ग पर सामान्य प्रभाव पड़ता है और उच्च वर्ग पर तो पड़ता ही नहीं। अतः उच्च और निम्न को एक दण्डस्तर पर रखना न्याय के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता।

इसे यथायोग्य दण्डव्यवस्था भी नहीं माना जा सकता। एक उदाहरण से इसे समझा जा सकता है- खेत चर जाने के अपराध में मेमने,भैंसे, हाथी को एक-एक डण्डा लगा। इसका यह प्रभाव पड़ेगा कि बेचारा मेमना तो पीड़ा से मिमियाने लगेगा, भैंसे पर सामान्य प्रतिक्रिया होगी। हाथी को डण्डे की अनुभूति ही नहीं होगी। यह यथायोग्य दण्ड नहीं हुआ। यह कहना भी भ्रान्ति है कि यह समान दण्ड हुआ, क्योंकि समानता भी वस्तुसापेक्ष होती है। यथायोग्य और समान दण्ड तो लोकव्यवहार में प्रचलित है। वहाँ मेमने को डण्डे से, भैंसे को लाठी से, हाथी को अंकुश व पाश से और शेर को हण्टर और पिंजरे से वश में किया

जाता है। एक और उदाहरण आर्थिकदण्ड का लीजिए– एक अत्यन्त निर्धन व्यक्ति एक हजार रुपयों के आर्थिक दण्ड को भूखा रहकर या कर्ज लेकर चुका पायेगा, मध्यवर्गीय थोड़ा कष्ट अनुभव करके चुका देगा और समृद्ध-सम्पन्न उसी दण्ड को जूती की नोंक पर रखकर देगा। इसे यथायोग्य और समान दण्ड तो क्या, दण्ड भी नहीं का जा सकता।

इसी अमनोवैज्ञानिक और अफलकारी दण्डव्यवस्था का दुष्परिणाम है कि दण्ड की पतली रस्सी में मेमने जैसे गरीब तो फँस जाते हैं और धन-पद-सत्ता सम्पन्न भैंसे, हाथी के सदृश शक्तिशाली लोग उस रस्सी में या तो फँसते ही नहीं या तोड़कर निकल भागते हैं और 'शेर' तो उल्टा गुर्राते हैं। आँकड़े इकट्ठे करके देख लीजिए, स्वतन्त्रता के बाद कितने निर्धन और निर्बल लोगों को सजा हुई है तथा कितने धन-पद-सत्ता बाहुबली लोगों को। आर्थिक, अपराधों में तो समृद्धजन आर्थिक दण्ड भरते रहते हैं और अपराध करते रहते हैं। वैदिक दण्ड व्यवस्था में ऐसा, असन्तुलन और असामर्थ्य नहीं है।

आज अन्याय का दण्ड वादी-प्रतिवादी दोनों को भुगतना पड़ता है। उनका धन, श्रम, समय व्यर्थ जाता है। वैदिक व्यवस्था में अन्याय का जिम्मेदार न्यायाधीश और राजा को माना जाता था, और उन्हें उसका दण्ड भुगतना पड़ता था। इसलिए वे अन्याय नहीं करते थे। पूर्व पृष्ठों में राजाओं-राजकुमारों को प्राप्त दण्ड के कुछ उदाहरण दिये जा चुके हैं। यदि वादी मिथ्या अभियोग प्रस्तुत करता था तो वह भी दण्डनीय होता था। न्यायपूर्ण, पक्षपातरहित यथायोग्य, शीघ्रकारी, प्रभावकारी, कठोर और मनोवैज्ञानिक दण्डव्यवस्था का सुपरिणाम यह था कि अपराध नगण्य होते थे। न्यायव्यवस्था की एक उज्ज्वल झांकी देखने योग्य है। वाल्मीकिकृत रामायण में आता है–

राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन् परस्परम्।

(६.१२८.१००)

दृश्यते न च कार्यार्थी रामे राज्यं प्रशासति।

(वही, ७.५९.१०)

'राम के आदर्श चरित्र, त्वरित एवं कठोर न्याय को देखते हुए लोग एक-दूसरे के प्रति अपराध ही नहीं करते थे। इस कारण मुकदमे भी नहीं होते थे और परिणामस्वरूप राम के शासन में न्यायालय खाली पड़े रहते थे। ... ' और आज, न्यायालयों में रोज मेले-से लगते रहते हैं। तब न कोई फीस थी, न स्टाम्प पेपर थे, न वकीलों की झमेला, न भारी भीड़ थी, न जटिल तकनीकी प्रक्रिया थी और न तकनीकी प्रक्रिया न्याय को अन्याय बनाती थी। विशेष और सामान्य सभी प्रजाजन समान रूप से सीधे और त्वरित न्याय प्राप्त कर सकते थे।

सामान्य जन की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति होती है कि वह राजन्य तथा उच्चवर्ग का अनुकरण करने में गौरव का अनुभव करता है और उस अनुकरण को शीघ्र ग्रहण करता है। वर्तमान राजनीति का जो विद्रूप स्वरूप है, उसका कलुषित चित्र जन सामान्य के सामने है। आजादी के सत्तर वर्षों में ही व्यवस्था रूपी चित्र विद्रूप हो चला है, अवश्य कलाकार या कला-सामग्री में कहीं-न-कहीं कोई कमी रह गयी है।

प्रश्न उठता है कि जब भारत के अतीत के खजाने में एक परखी हुई, उपयोगी और न्यायोचित स्वर्णिम वैदिक राज्यव्यवस्था था तो उसकी उपेक्षा क्यों की गयी? वस्तुतः यह आत्महीनता बोध का परिणाम और सांस्कारिक पराधीनता का प्रभाव है। राज्यव्यवस्था निर्माताओं ने दुनिया भर के संविधानों को उलटा-पलटा। कहा तो यह जाता है कि हमारा संविधान ८०% दूसरों की नकल है। फिर वे अपने वैदिक विधि शास्त्र को क्यों भुला गये? आज नहीं तो कल इस बिन्दु पर विचार करना ही होगा कि वैदिक राज्य की उपेक्षा करके हमने क्या खोया और क्या पाया?

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है।

(सत्यार्थ प्रकाश सम्मुलास ३)

अग्नि सूक्त-०१
भूमिका

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्य

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रहा है। गत अंक में मृत्यु सूक्त का अन्तिम व्याख्यान प्रकाशित हुआ। आप सभी ने उक्त सूक्त को उत्सुकतापूर्वक पढ़ा। आप सबकी इस वेद-जिज्ञासा को ध्यान में रखकर शीघ्र ही यह पुस्तक रूप में भी प्रकाशित कर दिया जायेगा। इस अंक (मार्च प्रथम) से ऋग्वेद के प्रथम सूक्त 'अग्निसूक्त' की व्याख्यान माला प्रारम्भ की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर जी की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा जी ही कर रही हैं। -सम्पादक

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।।

हम वेद-ज्ञान के प्रसंग में ऋग्वेद के पहले मण्डल के पहले सूक्त की चर्चा कर रहे हैं। हम इसमें देख यह रहे हैं कि हमारे ऋषियों ने हमको वेद पढ़ने की जो अनिवार्यता दी है उसका कारण, उसका आधार क्या है। हमने पीछे देखा कि वेद हमारे लिये प्रकाश का काम करता है, ज्ञान का काम करता है। जैसे प्रकाश में सब कुछ स्पष्ट दिखाई देता है और हमारा चुनाव करना, हमारा काम करना सहज हो जाता है, वैसे ही वेद पढ़ने से होता है। इसको आप एक उदाहरण से समझ सकते हैं-

जो हमारी आर्य-परम्परा है, उसमें वेद को धर्मग्रन्थ कहा है। मनु महाराज कहते हैं, **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।** धर्म हमारे जीवन के कर्त्तव्य का नाम है। अर्थात् जीवन में जो कुछ किया जा सकता है, किया जाना चाहिये- उस सबको कैसे करना, क्या करना, इसका विवेचन हमें वेद के द्वारा मिलता है। इसलिए यहाँ पर मनु महाराज कहते हैं-

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनाम् आत्मनस्तुष्टिरेव च।

उसमें मूल बात है- **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।** समस्त धर्म का जो मूल है, जो आधार है, जो कारण है, जहाँ से धर्म बताया समझाया जाता है, मनु महाराज ने कहा वह वेद है। वेद के महत्त्व को समझने के लिये आप संस्कारों पर यदि दृष्टिपात करें तो सबसे पहला संस्कार होता है- **जातकर्म**। अर्थात् जब शिशु उत्पन्न होता है, माँ के गर्भ से बाहर आता है उस समय किये जाने वाले संस्कार को **जातकर्म** कहते हैं। जात अर्थात् जन्म होने के बाद किया जानेवाला संस्कार, उसमें दो बातें मुख्य हैं- एक तो यह कि सोने की शलाका को मधु में डुबोकर बालक की जिह्वा पर पिता के द्वारा 'ओ३म्' लिखा जाता है। अब कोई कहे कि बालक की जिह्वा पर ओ३म् लिखने से क्या होगा? बालक के लिये तो कुछ नहीं होगा, बालक के जीवन में एक संस्कार पड़ रहा है, वो अनजाने में पड़ रहा है और पिता जानता है कि इस ओ३म् लिखने का अर्थ क्या है। अर्थात् जिह्वा के माध्यम से परमेश्वर की चर्चा और परमेश्वर का ज्ञान। कोई उपदेश के द्वारा जब हमें परमेश्वर का ज्ञान देता है तो उसका आधार जिह्वा है और जब हम किसी से परमेश्वर के बारे में चर्चा करते हैं तो उसका भी आधार जिह्वा है। तो जिह्वा के हजार-लाख काम हैं लेकिन जिह्वा का जो परम प्रयोजन है, वह जो मुख्य काम है वह है 'ओ३म्'। उस परमेश्वर को जानना, उस परमेश्वर के बारे में कहना, सुनना। पिता बालक के कान में एक बात कहता है **'वेदोऽसि'** तू साक्षात् वेद है। इसका अर्थ है कि तू बना ही वेद के लिए है। तेरे मनुष्य होने का और कोई लाभ नहीं है। खाना-पीना जागना-सोना, लड़ना-झगड़ना यह तो सारे काम मनुष्य से भिन्न जितने प्राणी हैं, वे सब भी करते हैं। कुछ इन सबसे अलग होने जैसी चीज है, जिसे और प्राणी नहीं कर सकते, केवल मनुष्य कर सकता है, वह उसका धर्माचरण है, जो वेद से जाना जाता है।

भर्तृहरि ने बड़ी सुन्दर पंक्ति लिखी है- **आहार निद्रा**

भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।। यदि आप तुलना करें पशु और मनुष्य की तो एक चीज को छोड़कर मनुष्य पशु है और पशु मनुष्य है। मनुष्य भोजन करता है, भोजन के लिये व्यवहार करता है, भोजन के लिये प्रयत्न करता है, पशु भी दिनभर भोजन के लिये ही मारा-मारा घूमता रहता है, उसको भोजन मिल जाए तो वह निश्चिन्त हो जाता है, उसको पर्याप्त भोजन हो जाता है। मनुष्य थककर सो जाता है, पशु भी थककर सो जाता है। जब उसको भोजन के काम से अवकाश मिल जाता है तो वह सो जाता है। मनुष्य डरता है, उसके मन में असुरक्षित भाव रहता है कोई मारेगा तो नहीं, कोई कुछ छीन तो नहीं लेगा। जो बलवान है वह कोई नुकसान तो नहीं पहुँचायेगा। पशु भी डरता है, वह ना सोता है तो भी हर समय चौकन्ना रहता है। कहीं थोड़ा सा भी शब्द हो जाए, आवाज हो जाए तो वह चौंककर उधर देखता है, उसका कोई शत्रु तो नहीं है, कहीं हानि पहुँचाने वाला तो यहाँ नहीं आ गया। सन्तान की उत्पत्ति और इच्छा पशु में भी है, मनुष्य में भी है। इसलिए भर्तृहरि ने एक बात कही कि मनुष्य जाति में और बाकी प्राणियों में चारों चीजें तो वैसी की वैसी हैं। अन्तर किसमें है? धर्म अर्थात् विवेक में। क्या करना है, क्या नहीं करना है, इसका जो विचार है यह केवल मनुष्य के पास होता है और यदि इस विकल्प से, इस विवेक से वह हीन है तो वह साक्षात् पशु है। उसके पास विवेक नहीं है, धर्म नहीं है तो उसमें और पशु में कोई अन्तर नहीं है। इस दृष्टि से ज्ञान हमारे लिये अनिवार्य चीज है। इसलिए ऋषियों ने, उस ज्ञान का जो ग्रन्थ है, धर्म का जो ग्रन्थ है उस वेद को मनुष्य से जोड़ा है।

हम जहाँ प्रतिदिन ओ३म् का उच्चारण करते हैं, वेद का पाठ करते हैं तो मनुष्य के जीवन में जो प्रयोजन है, उसे बताने के लिये यह एक बहुत अच्छा प्रकार है। जो हमारे संस्कार हैं, जहाँ जातकर्म संस्कार में हमने **वेदोऽसि** के द्वारा वेद से सम्पर्क जोड़ा। ओ३म् लिखकर जिह्वा से सम्पर्क जोड़ा। वैसे ही जब बालक बड़ा हो जाता है और वह पढ़ने योग्य हो जाता है, विद्यालय में जाता है, गुरुकुल में जाता है, उस समय जो संस्कार किया जाता है, उस संस्कार का नाम है- **'वेदारम्भ'**। यहाँ सोचने की बात है कि न तो इसे शिक्षारम्भ कहा, न अक्षराम्भ कहा, न विद्यारम्भ कहा, जबकि कर तो यही रहे हैं, अक्षरों को सिखा रहे हैं, अक्षरों का प्रारम्भ कर रहे हैं, लेकिन इस संस्कार का नाम दिया है **वेदारम्भ संस्कार**। अर्थात् हमने जो आज अक्षर सीखा है उसका प्रयोजन अक्षर सीखना नहीं है। अक्षर सीखकर यदि कोई पुस्तक हमने पढ़ी है, चाहे वह व्याकरण की है, साहित्य की है, दर्शन की है, विज्ञान की है, तकनीक की है तो भी हमारा प्रयोजन पूरा नहीं होता। हमारा प्रयोजन तो तब पूरा होता है जब हम इस अक्षरज्ञान के फलस्वरूप वेद को जानें, पढ़ें, समझें। वेद को पढ़ने का जो प्रयोजन है उसके लिये हम अक्षर का ज्ञान कर रहे हैं, इसलिए इस अक्षर जानने के संस्कार का नाम वेदारम्भ है अर्थात् आज से वेद के लिये कोई यत्न प्रारम्भ किया है। इसलिये इसे वेदारम्भ कहा है। इस वेदारम्भ संस्कार में वेद का भी प्रारम्भ है। आचार्य शिष्य को जो गुरुमन्त्र का उपदेश देता है, वह गायत्री मन्त्र से देता है, तो यहाँ वेद का पढ़ना भी प्रारम्भ हो जाता है। वेद के इस मन्त्र के पाठ के साथ वेद के मन्त्र के परिचय के साथ वेदारम्भ होता है, इसलिए इसे वेदारम्भ कहते हैं। इतना ही नहीं, जब आगे पढ़ा जाता है तो आपको आश्चर्य होगा कि पढ़ने के लिये तो बहुत सारे शास्त्र हैं। पुराने समय के हिसाब से भी कोई दर्शन पढ़ता है, कोई व्याकरण पढ़ता है, कोई साहित्य पढ़ता है, कोई ज्योतिष पढ़ता है, कोई कुछ और पढ़ता है। लेकिन जो मुख्य पढ़ने योग्य है, यह सब उसके लिए सहायक होना चाहिए।

हम समझते हैं व्याकरण पढ़ने से भाषा अच्छी आती है, लेकिन शास्त्र कहता है व्याकरण पढ़ने का प्रयोजन भाषा सीखना नहीं है, बल्कि भाषा से हमको वेद समझ में आना चाहिये। ऋषि दयानन्द जब वेदांग प्रकाश की भूमिका लिखते हैं, तब वे यही लिखते हैं कि व्याकरण के सम्यक् ज्ञान से वेदार्थ में प्रवृति हो, तो व्याकरण का कोई फल है, कोई लाभ है। लेकिन मनुष्य व्याकरण पढ़ भी ले और वेदार्थ में उसकी रुचि न हो, गति न हो तो वे कहते हैं कि उस पढ़ने का कोई विशेष लाभ नहीं है। उसका जो परम प्रयोजन है उसकी सिद्धि नहीं होती। उसकी सिद्धि के लिये जो पढ़ने वाला है, वह पढ़ तो ज़रूर व्याकरण रहा है लेकिन उसे पढ़ना क्या है? पढ़ना तो उसको वेद ही है।

इसको यदि हम समझना चाहें, तो एक बहुत आसान तरीका है। एक व्याकरण के बड़े भारी आचार्य हुए हैं जिनका नाम पतञ्जलि है और उन्होंने व्याकरण पर एक बहुत बड़ा ग्रन्थ लिखा है अष्टाध्यायी की व्याख्या के रूप में, उसका नाम महाभाष्य है। उस महाभाष्य का प्रारम्भ करते हुए शुरू की पंक्तियों में वे एक बात लिखते हैं कि व्याकरण क्यों पढ़ना चाहिये। इसे क्यों पढ़ना चाहिये के प्रयोजन तो १८ हैं, लेकिन जो मुख्य हैं, वे ५ हैं- रक्षा, ऊहा, आगम, लघु, असन्देह। अर्थात् इस व्याकरण से भाषा का ज्ञान तो होता है, इसके पढ़ने से मन में ऊहा करना आता है। ऊहा 'तर्क' को कहते हैं, ऊहा विशेष विचार को कहते हैं। इससे जानकारी बढ़ती है, इससे अर्थ के निर्णय करने में लाभ होता है, सहायता मिलती है, इससे अर्थ के करने से हमारे अन्दर जो शब्दों को, मन्त्रों को, प्रकरण को लेकर सन्देह होता है, संशय होता है उसकी निवृत्ति होती है। व्याकरण पढ़ने से बहुत लम्बी-चौड़ी बात को बहुत थोड़े शब्दों में कहना भी आता है। लेकिन ये जो चारों प्रयोजन हैं, ये बाद के हैं। ५ में भी जो ४ प्रयोजन हैं ये बाद के हैं। सबसे पहला और सबसे मुख्य जो प्रयोजन है व्याकरण सीखने का, या कोई भी शास्त्र सीखने का, वह है वेद को समझना, वेद को जानना, वेद की रक्षा करना। इसलिये ५ प्रयोजनों में जो पहला प्रयोजन है वह वेद की रक्षा है और इसका अर्थ करते हुए पतंजलि जी कहते हैं- **'रक्षार्थम् वेदानाम् अध्ययेयम् व्याकरणम्'** अर्थात् व्याकरण तो पढ़ो आप, यह भी ठीक है कि व्याकरण पढ़ने से आपकी भाषा तर्कसंगत हो जाएगी, लेकिन उसका जो मुख्य लाभ है वह है **वेदानाम् रक्षार्थम्**। अर्थात् वेद का कोई अन्यथा अर्थ न कर ले, उसकी कोई अन्यथा व्याख्या, संगति न लगा ले। उसका जो अभिप्राय है, प्रयोजन है जिसके लिये उसे बनाया गया है, सुनाया गया है उसी से उसका लाभ मिलना चाहिये। इसलिये परमप्रयोजन में जो पहला प्रयोजन बताया, वह है- रक्षा। तो हम देखते हैं कि हमारे ऋषि लोगों ने २४ घण्टे, पूरे वर्ष और पूरे जीवन, वेद से बाँधकर, वेद से जोड़कर रखने का प्रयास किया, उसका यही उद्देश्य है कि कभी भी हम अज्ञान अन्धकार में न फँसे और ज्ञान के प्रकाश में बने रहें।

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ **पृष्ठ :** २१६ **मूल्य :** १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा **पृष्ठ :** ८० **मूल्य :** ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर **पृष्ठ :** ३०४ **मूल्य :** २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग **पृष्ठ :** २८८ **मूल्य :** १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बाहर का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी **पृष्ठ :** १७४ **मूल्य :** १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

कुछ तड़प–कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

फूले दयानन्द की फुलवाड़ी– श्री पं. इन्द्र जी रचित एक गीत की यह भावपूर्ण मधुर पंक्ति प्रत्येक वैदिकधर्मी ऋषि-भक्त के हृदय को तरङ्गित कर देती है, आशावादी बनाती है। इससे सोच सकारात्मक बनती है। इन दिनों तीन घटनायें ऐसी घटीं जिनका परोपकारी पाक्षिक से भी विशेष सम्बन्ध है। उन तीनों घटनाओं ने मुझे इस पंक्ति को शीर्षक बनाकर आर्यमात्र से कुछ निवेदन करने की प्रेरणा दी।

अहमदाबाद गुजरात से एक अस्सी वर्षीय आर्य विद्वान्, विचारक, मिशनरी साहित्यकार ने चलभाष पर मुझसे कुछ विशेष विचार-विमर्श किया। परोपकारी के इसी स्तम्भ को वह नियमपूर्वक पढ़ते हैं। परोपकारी के बहुत प्रबुद्ध प्रेमी पाठक हैं। बहुत कुछ लिखा है और लिखते ही रहते हैं। महात्मा गाँधी के आश्रम में (साबरमती नहीं, दूसरे में) वेद-प्रचार के लिये कक्षायें लगाते हैं। अभियन्ता के पद से आप सेवामुक्त हुए हैं। ५३ वर्ष की आयु में संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया। वेद आदि के विषय में बहुत कुछ लिख चुके हैं।

सब जानकारी पाकर उनकी भावनायें जानीं तो मुझे श्री क्षेमकरण त्रिवेदी का स्मरण हो आया। गुजरात में स्व. श्री सत्यव्रत स्नातक मुम्बई के अतिरिक्त किसी आर्य ने जी जान से साहित्य-सेवा नहीं की। श्री शंकरदेव विद्यालङ्कार मेरे कृपालु थे। सिद्धहस्त साहित्यकार थे, परन्तु अभिनन्दन ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ देकर नहीं गये। श्री पं. ज्ञानेन्द्र जी, श्रद्धेय आत्माराम जी की कोई गुजराती जीवनी लिखने का उद्यम न कर सका। छुटपुट लेख लिखकर और व्याख्यान देकर धर्म-प्रचार की किसी ने धूम न मचाई। अवैदिक मत-पन्थों से टक्कर लेने के लिये किसने गुजरात से कोई पठनीय ग्रन्थ दिया?

मैंने अहमदाबाद के जिस विद्वान् समाजसेवी की यहाँ चर्चा की है, आपने मुझसे डॉ. गुलाम जेलानी जी जैसे मुसलमानों के साहित्य तथा उनके साहित्य को लेकर मैंने क्या कुछ लिखा व लिख रहा हूँ, यह सब जानकारी माँगी। आप गुजरात के पहले वयोवृद्ध विद्वान् समाजसेवी हैं जिन्होंने ऐसी रुचि दिखाई है। महर्षि पर मुस्लिम विद्वानों ने क्या-क्या लिखा है? कहाँ-कहाँ लिखा है? यह सब कुछ पूछा। मैं क्या-क्या बताता? तथापि इतना तो कहा कि आर्यसमाज के अधिकांश लेखक जो आजकल लिखते हैं वे सर सैयद अहमद की रट लगाना ही जानते हैं। आगे कुछ सरकते ही नहीं।

उन्हें बताया कि बर्मिंघम इंग्लैण्ड से शास्त्रार्थों पर पीएच.डी. करने वाले डॉ. शहरयार ने अपने शोध-प्रबन्ध में आर्यसमाज का डंका कैसे बजाया? यह क्या परोपकारी में चर्चा होने पर किसी ने इधर ध्यान दिया?

सज्जनों मैं फिर कुछ समय के पश्चात् इस मान्य गुजराती आर्यसमाजी पर कुछ लिखूँगा। आज तो परोपकारी परिवार के एक-एक पाठक को तथा विशेष रूप से श्री डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी तथा मान्या ज्योत्स्ना जी को विशेष बधाई देता हूँ जिनके मिलेजुले पुरुषार्थ से ऐसे-ऐसे गुणी, पुरुषार्थी आर्यों से हम जुड़ रहे हैं, जो तन, मन, धन से ऋषि-मिशन की सेवा में लगे हैं।

कौन जानता था?– लीजिये, विदेश से एक समर्पित आर्ययुवक, विद्वान् गवेषक जो प्रति सप्ताह मुझसे ऋषि के मिशन विषयक विचार-विमर्श करते हैं, आपने कोई चार दिन पूर्व पं. चमूपति जी के जीवन के सम्बन्ध में कुछ जानकारी माँगते हुये मुझे एक पठनीय पुस्तक की जानकारी दी जो कभी लाहौर से छपी थी और जिसके लेखक पूज्य स्वामी वेदानन्द जी महाराज थे। देश-विभाजन के पश्चात् आप कोई दो-ढाई मास कादियाँ में रहे। नित्यप्रति सत्संग में ज्ञान गंगा से सबको तृप्त किया करते थे। सबसे छोटी आयु का श्रोता तब यही लेखक नियमपूर्वक सत्संग में जाता था। स्वामीजी से बहुत कुछ सुना, सीखा व पाया। शङ्का-समाधान करता ही रहता था।

जिस पुस्तक की मुझे जानकारी अब मिली है, इसके बारे न तो कभी स्वामी जी ने मुझे बताया और न ही मैंने स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, पं. शान्तिप्रकाश जी, मेहता जैमिनि

जी और स्वामी सर्वानन्द जी से कभी कुछ सुना। मैंने उस बन्धु को बताया कि अभी छः मार्च को पं. चमूपति पर मेरी एक पठनीय पुस्तक का विमोचन होगा। जिस पुस्तक की मुझे जानकारी दी गई है वह शीघ्र मुझे प्राप्त हो जावेगी। मैं इसका लाभ अति शीघ्र किसी नई पुस्तक में आर्यधर्म प्रेमियों को पहुँचाऊँगा। यह नई जानकारी विदेश से पाकर मेरा हृदय पुकार उठा-

फूले दयानन्द की फुलवाड़ी

यह जो जानकारी मुझे मिली है, यह गवेषक भी 'कुछ तड़प-कुछ झड़प' का प्रेमी है, सो पुनः परोपकारी परिवार को हार्दिक बधाई स्वीकार हो।

यह माँग आई है- अमेरिका से इस सेवक के एक युवा मिशनरी कृपालु ने एक माँग रखकर मुझे चकित भी कर दिया और आनन्दित भी। आप हैं महाराष्ट्र में जन्मे आर्यवीर श्री रञ्जीत जी। आप निरन्तर ऋषि-मिशन की सेवा करते हैं। मेरे सम्पर्क में रहते हैं। परोपकारी को उसी उत्सुकता, श्रद्धा व लगन से पढ़ते हैं जिस श्रद्धा से वेद, सत्यार्थप्रकाश आदि का स्वाध्याय करते हैं। अब मुझे एक कार्य सौंपा गया है। पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी, श्रद्धेय उपाध्याय जी, पं. शान्तिप्रकाश जी, पं. नरेन्द्र जी, स्वामी वेदानन्द जी, महाशय कृष्ण जी आदि-आदि जिन-जिन विभूतियों के सम्पर्क में मैं आया, जिनसे कुछ सीखता रहा उन सबके सम्बन्ध में अपने संस्मरणों को व्याख्यान के रूप में रिकॉर्ड करवाऊँ। पूज्य पं. ब्रह्मदत्त जी 'जिज्ञासु', श्रद्धेय आचार्य उदयवीर, पं. भगवद्दत्त जी, मीमांसक जी से लेकर धर्मवीर जी तक अधिक से अधिक आर्य महापुरुषों पर बहुत सोच-समझकर ठोस संस्मरणों की यह माँग हुई है। मैं जो कुछ बोलूँगा सत्य ही होगा। धर्महित, समाजहित में होगा।

साथ ही एक और आदेश विदेश से हुआ है कि 'बड़ों की बड़ी बातें' अपनी पुस्तक के दूसरे व तीसरे भाग का सृजन करके छपवाने की शीघ्र व्यवस्था की जावे। प. चमूपति के शब्दों में, ''इस प्यारी पै वारी, मैं मीत पै वारी, दिलजीत पै वारी।'' जीवन के अन्तिम श्वाँस तक ऋषि मिशन की सेवा करता रहूँगा। पाठकों का आशीर्वाद मिलता रहे। मैं फिर दोहराता हूँ-

फूले दयानन्द की फुलवारी

मराठी भाषा में मनुस्मृति : एक करणीय कार्य सम्पन्न- देश तथा आर्यसमाज के सम्बन्ध में निराश करनेवाले समाचार पढ़-सुनकर हृदय पर क्या बीतती है इस विषय में क्या लिखा जावे? परन्तु जब किसी करणीय शुभ कार्य के सिरे चढ़ने का समाचार पहुँचाया जावे। ऐसा करने से प्रत्येक व्यक्ति के मन में न सही कुछ एक के मन में तो देश धर्म की रक्षा व सेवा करने के सद्भाव अवश्य जगेंगे। मुझे जब यह सूचना प्राप्त हुई कि आदरणीय डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी की शुद्ध मनुस्मृति ग्रन्थ का मराठी अनुवाद छपकर प्रसारित किया जा चुका है तो मुझे कितनी प्रसन्नता हुई, इसे मैं ही जानता हूँ या वह सर्वज्ञ प्रभु जानता है। महाराष्ट्र के आर्यों का इस कार्य के लिये किन शब्दों में अभिनन्दन किया जावे? यह सूझ ही नहीं रहा।

यह समाचार प्राप्त होते ही मैंने अविलम्ब अपने समाज के प्रिय रत्न डॉ. नयनकुमार जी को चलभाष करके अपने उद्गार अर्पित किये। ग्रन्थ मेरे पास पहुँचने ही वाला है। मुझे कार्यसाधक मराठी का ज्ञान है। ग्रन्थ का अवलोकन करके एक बार पुनः कुछ लिखूँगा। मुझे झट से ब्र. नन्दकिशोर जी, मान्य डॉ. कुशलदेव जी का स्मरण हो आना तब स्वाभाविक ही था। इन दोनों धर्मवीरों के साथ तीसरा व्यक्ति मैं था जो मराठी में इस अद्भुत ग्रन्थ के अनुवाद के लिये महाराष्ट्र में अलख जगाते रहे। महाराष्ट्र सभा को बधाई देने से मेरा कर्त्तव्य पूरा नहीं हो जाता। यदि समाचार प्राप्त होते समय डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी मेरे निकट कहीं होते तो मैं उनके उस हाथ को चूम लेता जिसने यह ग्रन्थ रत्न तैयार किया। मैं डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी को लिपट-चिपट कर उनके इस सम्मान पर, इस उपलब्धि पर भावभरित हृदय से बधाई तथा शुभकामनायें भेंट करता। ऐसे अवसर पर मैं उन्हें याद न करता तो यह एक अक्षम्य भूल होती।

इसके साथ ही अगला समाचार तथा बधाई- श्रीयुत रणजीत आर्यवीर अमेरिका में बैठे हैं। वहाँ भी ऋषि-मिशन की जी भर कर सेवा कर रहे हैं। उनकी प्रेरणा तथा पुरुषार्थ से मेरे द्वारा लिखित 'लौहपुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द' तथा 'जीवन-यात्रा स्वामी श्रद्धानन्द' का अनुवाद किसी भी समय अब छपकर मराठी भाषी जनता

को प्राप्य होंगे। जो कार्य सभायें न कर सकीं और न करवा सकीं वह पं. लेखराम के इस तप:पूत ने करवाकर दिखा दिया है। अनुवाद भी करवा दिया और प्रकाशन की भी सब व्यवस्था कर दी। मैंने उन्हें कहा था कि इन दोनों ग्रन्थों के मराठी अनुवाद को देखकर मैं भी ३-४ पृष्ठ का कुछ प्राक्कथन दूँगा, परन्तु कोरोना महामारी का रोना समझें अथवा किसी अन्य कारण से मेरे तक इन ग्रन्थों के अनुवाद की प्रति ही नहीं पहुँची तो मैं लिखता क्या?

किसी भी प्रान्तीय भाषा में आज तक अमर धर्मवीर पं. लेखराम जी का जीवन-चरित्र नहीं छपा। डॉ. रणजीत जी के अदम्य उत्साह से पण्डित जी का विस्तृत जीवन-चरित्र भी छपकर आने वाला है। इस ग्रन्थ का लेखन किसने किया है? यह मुझे पता नहीं। सम्भवत: यह भी हिन्दी में छपे स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखित जीवन-चरित्र अथवा मेरे ही किसी छोटे-बड़े ग्रन्थ का मराठी अनुवाद हो। महाराष्ट्र के आर्यवीरों ने सचमुच एक नया इतिहास रचकर अगली पिछली सारी कमी निकाल दी। महाराष्ट्र के आर्यवीरों ने वीरवर वेदप्रकाश, श्यामभाई से लेकर पं. नरेन्द्र जी तक हमारे सब प्राणवीरों की तपस्या तथा बलिदानी इतिहास को चार चाँद लगा दिये हैं। मेरे मनोभावों को महाराष्ट्र की आर्यजनता तक मान्य रमेश ठाकुर जी क्या पहुँचाने की कृपा करेंगे?

खेतों को दे लो पानी अब बह रही है गंगा

यह पंक्ति आर्यों के एक पुराने ऐतिहासिक गीत की है। शास्त्रार्थ महारथी पं. बुद्धदेव जी मीरपुरी हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के समय श्री महाशय ख़ुशहालचन्द जी (महात्मा आनन्द स्वामी जी) को गुलबर्गा जेल में मिलने गये तो आपने अपने बन्दी नेता से बाहरवालों के नाम कुछ सन्देश माँगा। तब मान्य ख़ुशहालचन्द जी ने अपनी रसभरी वाणी से यह पद्य सन्देश रूप में उन्हें सुनाया-

खेतों को दे लो पानी अब बह रही है गंगा
कुछ कर लो नौजवानो उठती जवानियाँ हैं।

आर्यसमाज की वेदी से आर्यनेता तथा विद्वान् प्रेरणा के लिये यह पद्य बहुत बार सुनाया करते थे। सुझाव देने में तो बहुत से व्यक्ति कोई कमी नहीं छोड़ा करते, परन्तु कुछ करके दिखाना ऐसे लोगों के बस की बात नहीं। आर्यप्रादेशिक सभा के लीडरों के मन में सभा का इतिहास लिखने की बात यदाकदा गुदगुदाती रही, परन्तु लिखे कौन?

सबसे पहले स्वर्गीय लाला इन्द्रसेन जी ने अपने पिता मास्टर श्री नन्दलाल जी की उपस्थिति में कभी जालन्धर में मुझे यह प्रस्ताव दिया था। मैंने न तो तब 'नहीं' कही की थी, परन्तु 'हाँ' भी न की। बात आई गई हो गई। प्रिं. श्रीराम शर्मा से कभी डी.ए.वी. का इतिहास Our Educational Mission के नाम से लिखवाया गया। यह निर्जीव पोथी धन का नाश मात्र थी सो अपनी मौत आप मर गई। आगे चलकर जब बाबू दरबारीलाल डी.ए.वी. तथा प्रादेशिक सभा का सर्वेसर्वा बना तब श्री अमर स्वामी जी को प्रादेशिक सभा के इतिहास का कार्य सौंपा गया। महात्मा आनन्दस्वामी जी तब जीवित थे।

अमरस्वामी की कोटि के महाविद्वान् ने ठीक समय-सीमा में यह कार्य कर दिया। इस कार्य में महात्मा जी का तथा मेरा सहयोग उन्हें प्राप्त रहा। अमरस्वामी जी तथा महात्मा आनन्दस्वामी जी इन दोनों ने यह शर्त रखी कि प्रकाशन पूर्व "यह पाण्डुलिपि जिज्ञासु जी को अवश्य दिखाई जावे। वह इसमें जो काँट-छाँट करना चाहें कर दें और जो उल्लेखनीय बात छूट गई है, वह जोड़ दें।"

बस यही शर्त अमरस्वामी जी के परिश्रम को मिट्टी में मिलाने का कारण बन गई। ये दोनों महात्मा उसमें कुछ अदल-बदल करने का अधिकार बाबू दरबारीलाल या उसके किसी विशेष व्यक्ति को देते तो ग्रन्थ छप भी जाता।

एक बार बाबू दरबारीलाल ने मुझे इन दोनों महात्माओं की शर्त सुनाते हुये कहा कि आप एक बार पाण्डुलिपि देख लें तो इसे छपने दे दिया जावे। मैंने प्रेमपूर्वक कहा, "मेरा पुस्तकालय तथा Documents सब अबोहर में हैं। आप पाण्डुलिपि भेज दीजिये महात्माओं की आज्ञा शिरोधार्य, यह कार्य हो जावेगा।" किसी ने फिर पाण्डुलिपि की मुझसे चर्चा ही न की। लाला सूरजभान डी.ए.वी. कमेटी तथा प्रादेशिक सभा के प्रधान के रूप में अबोहर आये तो फिर प्रेमपूर्वक मुझे इस कार्य को करने के लिये कहा।

मैंने बाबू दरबारीलाल से हुई बातचीत सुनाकर कहा, "मैं कई मास से बाट जोह रहा हूँ, परन्तु पाण्डुलिपि अब

तक नहीं मिली।'' यह सुनकर लाला सूर्यभान दंग रह गये और कुछ बोल भी न सके। कारण दरबारीलाल का कुछ आतंक ही ऐसा था कि प्रधान भी उसके सामने भीगी बिल्ली बन जाया करते थे। महात्मा आनन्दस्वामी जी तथा अमरस्वामी जी को दरबारीलाल से हुआ संवाद सब सुना दिया। अपने देहान्त से पूर्व फिर आनन्दस्वामी जी ने यह चर्चा छेड़ी। अमरस्वामी अपनी पाण्डुलिपि वापिस ले लेते तो अच्छा होता।

एक-एक करके दरबारीलाल, लाल सूर्यभान तथा दोनों महात्मा भी चले गये। मैंने महात्मा आनन्दस्वामी जी के आदेश से एक बार पाण्डुलिपि की खोज आरम्भ की तो श्री दरबारीलाल के निष्काम सेवक श्री रामनाथ सहगल भी कुछ न बता सके और कुछ न कर सके और अधिक इस विषय में मैं कुछ लिखना नहीं चाहता।

बड़ी आयु के सब समाजसेवियों से तथा उत्साही, कर्मठ युवा ऋषिभक्तों से कहना चाहूँगा कि नित्यप्रति ऋषि-मिशन की सेवा के कार्य निपटाते जाओ।

कुछ कर लो नौजवानो उठती जवानियाँ हैं
खेतों को दे लो पानी अब बह रही है गंगा

पूज्य मीमांसक जी तथा आचार्य उदयवीर जी से कुछ सीखो। कार्य निपटाते जाओ। जो विचार, जो काम मन में सूझे उसे सिरे चढ़ाने में जुट जाओ। महाशय कृष्ण जी का कथन है कि लटकाओ नहीं अन्यथा आप तो एक दिन जाओगे ही, समाज को रोना व पछताना पड़ेगा। डॉ. धर्मवीर जी निठल्ले तो कभी बैठते नहीं थे। उनके पास देने को पर्याप्त मूल्यवान् ज्ञान था। मैंने उनको समय-समय पर कुछ पुस्तकों के कुछ सुझाव दिये। **'न' तो कभी मुझे की नहीं**। पुस्तक मेरे से तो नई-नई लिखवाते गये और अनहोनी होके रही। हम मौलिक सूझवाले उस नररत्न को खोकर अब रोने के अतिरिक्त क्या कर सकते हैं? धर्मवीर जी की मृत्यु से साठ वर्ष से ऊपर के सब समाजसेवी कुछ तो सीखो।

वृद्धों से निवेदन- पूज्य उपाध्याय जी ने स्वामी अमृतानन्द जी से एक लेख में कहा था आपको अनुकूल आश्रम, कार्यकेन्द्र न मिले तो अपने निवास को ही सेवा-केन्द्र बनाकर २४ घण्टे, दिन और रात समाज के लिये समर्पित हो जाओ और सारे काम-धन्धे छोड़ दो। लेखनी तथा वाणी से ऋषि-ऋण चुकाते चलो। उठते-बैठते और सोते-जागते केवल पं. लेखराम जी तथा स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान से प्रेरणा पाकर नया-नया इतिहास रचते जाओ।

सत्तर वर्ष से ऊपर वाले! चिपकू मत बनो। पदों का परित्याग करके मैदान में उतरो। नर तन को सफल करो। युवक घर गृहस्थी निभाते हुए प्रतिदिन दो से पाँच घण्टे आर्यसमाज को देने का स्वभाव बनावें। आदत डालें। ऋषि के मिशन को आपके सुझाव व थोथे लेख तथा readymade लैक्चर नहीं चाहिये। आपका समर्पण भाव से दिया गया समय चाहिये। तन, मन, धन से ऋषि-मिशन की सेवा की दुहाई तो बहुत दी जाती है। देखा यह गया है कि धन मुख्य हो गया है। आप समाज को तन दो और मन दो। आपके तन-मन देने से धन अपने आप आयेगा और वर्षेगा।

देखिये! मैंने अशोक जी से बार-बार केरल वैदिक मिशन की बैठक बुलाने को कहा। सब कुछ नये युवकों को सौंपा जावे। हम सहयोग करें। पाँच-छः वर्ष बैठक न बुलाने से, अशोक जी के क्षणभर में चले जाने से एक समस्या खड़ी हो गई। मैं स्वयं सभा-संस्थाओं से अलिप्त होकर पूरा समय समाज-सेवा में दे रहा हूँ। प्रातःकाल से सायंकाल तक जो कुछ मुझसे होता है किये जा रहा हूँ। विधर्मी अपने प्रचार में सक्रिय हैं। मत-पन्थों के द्वारा फैलाये जा रहे अन्धविश्वासों का निराकरण तथा आक्षेपों का उत्तर देनेवाले विद्वान्, लेखक और साहित्यकार कितने हैं और कहाँ हैं? आर्यसामाजिक पत्रों में ही निराधार, सिद्धान्त-विरुद्ध बहुत कुछ छप रहा है, इसलिये आओ महाशय सुदर्शन जी की तान छेड़ें-

पराई आग में जलना, मरीज़ों की दवा बनना।
कोई सीखे दयानन्द से धर्म पर जाँ फ़िदा करना।।

प्रामाणिक लेखन की परम्परा की रक्षा हो- चण्डीगढ़ के समीप मरुण्डा नाम के कस्बे के मुसलमानों के एक विवाद में एक मुसलमान ने कुफ्र का दोषी घोषित करने के लिये फ़त्वा दिया जाना था। वह भागा-भागा वहीं के एक आर्योपदेशक पं. रामनाथ के पास आकर गिड़गिड़ाया कि मुझे अपने विरुद्ध दिये जानेवाले फ़त्वे के उत्तर में

इस्लामी साहित्य से कोई प्रमाण दीजिये ताकि मैं बच जाऊँ। भरी पंचायत में सब मौलवियों के सामने जब अभियुक्त ने हमारे पण्डितजी द्वारा बताई गई एक प्रसिद्ध हदीस का प्रमाण सुनाया तो सब मौलवी उठकर चले गये। उस प्रमाण को कोई काट न सका।

आज हमें पता ही नहीं चलता कि वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि में अन्य मत-पन्थों की पुस्तकों में क्या-क्या छप रहा है। यदि बताओ भी तो आगे उसे प्रचारित नहीं किया जाता। विश्वप्रसिद्ध लेखक श्री अनवर शेख ने लिखा है कि आर्य लोग भारत में बाहर से आये, यह बहुत बड़ी बकवास है। न जाने आर्यों के आदि देश की चर्चा छेड़नेवाले आर्यलेखक इस प्रमाण का लाभ क्यों नहीं उठाते। यह भी एक प्रकार का रोग है कि आर्यसमाज में कुछ लोग सत्य और तथ्य को ग्रहण करना ही नहीं चाहते।

ऐतिहासिक तथ्य- लाला लाजपतराय के साथी क्रान्तिकारी मेहता आनन्दकिशोर जी लिखित लाला जी के जीवनकाल में छपा उनका पहला प्रामाणिक तथा बड़ा चरित्र मेरे सामने है, उसमें लाला जी के जन्मस्थान का नाम ठीक-ठीक दिया है। यही नाम श्री अलगूराय शास्त्री, डॉ. हरिशंकर जी शर्मा तथा मेरी पुस्तकों में छपा है। दयानन्द सन्देश के फ़रवरी के अंक में पृष्ठ ११ पर मुझे **डॉ. विवेक** का लाला लाजपतराय पर छपा लेख पढ़ाया गया है, आपने उनके जन्मस्थान का नाम 'दुधिके' लिखा है। यह नाम तो डाक-विभाग की नगरों व ग्रामों की सूची में कतई नहीं मिलेगा। हिसार में लाला जी जब हिसार नगरपालिका के लिये चुने गये, तब वहाँ अधिकांश जनसंख्या मुस्लिम थी, यह कथन भी निराधार है। हिसार किसी भी समय मुस्लिम बहुल ज़िला नहीं रहा। साइमन कमीशन के लाहौर आगमन पर मालवीय जी को वहाँ पर उपस्थित बताया गया है। लाला जी के बलिदान के समय के दैनिक 'तेजप्रताप' तथा 'मिलाप' के बलिदान अंक मैंने ध्यान से पढ़ रखे हैं। कोई भी जीवनी-लेखक और इतिहासकार ऐसा लिखने का साहस नहीं कर सका। यदि मालवीय जी का उस समय लालाजी के साथ होना कोई प्रमाणित कर दे तो मैं अपनी भूल का सुधार कर लूँगा। क्षमा भी अवश्य माँग लूँगा।

बात बहुत सरल तथा सीधी है कि तब लाहौर में लाला जी तो पुलिस की लाठियों से कुछ ही दिन में वीरगति पा गये और मालवीय जी को खरोंच तक न आई। प्रताप के बलिदान अंक में इतना तो छपा मिलता है कि मालवीय जी ने तब लाला जी के बलिदान का समाचार पाकर लाहौर सन्देश भिजवाया था कि मेरे लाहौर पहुँचने तक उनका अन्तिम संस्कार न किया जावे। यदि किसी ने मालवीय जी का साइमन कमीशन के आगमन के समय लालाजी के साथ होना लिखा है तो यह गले से नीचे उतरने वाली बात नहीं है।

प्रसिद्ध इतिहासकार यदुनाथ सरकार ने शिवाजी पर अपनी सशक्त लेखनी से बहुत ठोस जानकारी दी है, परन्तु यदुनाथ सरकार को तो यह लिखने का साहस ही न हुआ कि शिवाजी ने अपनी आत्मकथा भी लिखी थी। लाला जी के लोकसेवक मण्डल का अबोहर में भी एक केन्द्र है। कुछ वर्ष पूर्व लालाजी से जुड़े एक पर्व पर अबोहर केन्द्र के लोकसेवक मण्डल के मुखिया विशेष रूप से मेरे निवास पर पधारे तो लालाजी द्वारा लिखित शिवाजी, स्वामी दयानन्द, मेज़िनी, गैरीबाल्डी की जीवनियों के पहले संस्करण दिखाने की इच्छा व्यक्त की। मैंने लाहौर से छपी ऐसी सब पुस्तकें दिखाई तो भावुक होकर उस बन्धु ने उनको माथे से लगाते हुये कहा, ''आप धन्य हैं जो ऐसे-ऐसे दुर्लभ संस्करण खोज-खोज कर सुरक्षित किये।'' मेरे लिये डॉ. विवेक जी का यह कथन पचाना असम्भव है कि ये सब पुस्तकें अनुवादित हैं। कोई भी व्यक्ति मेरे पास आकर ये पुस्तकें देखकर सत्य व तथ्य को जान सकता है।

अबोहर, पंजाब।

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७

ऐतिहासिक कलम से....

मृत्यु और जन्म के बीच की गति

पं. जगदेवसिंह सिद्धान्ती

जन्म से लेकर मरण तक की दशा को तो सर्वसाधारण मनुष्य भी देखते और जानते हैं, परन्तु मृत्यु के आरम्भ से लेकर उस जीव के अगले जन्म के बीच की क्या दशा होती है, उसको हम सामान्यजन नहीं जान सकते, क्योंकि जीव को इसका साधारण ज्ञान नहीं होता और साधारण ज्ञान के बिना अनुमान प्रमाण भी काम नहीं दे सकता। यह बड़ी गम्भीर समस्या है, परन्तु सर्वज्ञ परमात्मा जीवों के कल्याण के लिये इस बात को मनुष्यों को समझाने के लिये वेद का उपदेश देता है। वेद ही परम प्रमाण है, क्योंकि यह ईश्वर का वचन है। हमारे पूर्वज ऋषि महर्षि आप्त विद्वानों ने वेद का अभ्यास करके इस समस्या का अपने ग्रन्थों में समाधान किया है। वेद के आधार पर बने ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों (आरण्यक, उपनिषदों, आयुर्वेद तथा दर्शन-शास्त्रों) में इस दशा पर बहुत उत्तम और खुलकर लिखा गया है। इन्हीं आप्त ग्रन्थों के स्वाध्याय से विद्वान् लोग भी इसका मनन करके साधारण लोगों को समझाते आये हैं। मनुष्य जन्म केवल रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकताओं तक सीमित नहीं है-यद्यपि ये पदार्थ अनिवार्य रूप से प्राथमिक आवश्यकता के रूप में ग्रहण करने ही चाहियें। इनकी अनिवार्यता का निषेध कोई भी समझदार सज्जन नहीं कर सकता, परन्तु मनुष्य का जीवन यहीं तक सीमित नहीं है। मनुष्य का ध्येय उपर्युक्त पदार्थों से बहुत आगे तक है। भगवान् ने प्रत्येक जीव को उसको काम करने के साधन दिये हैं। मनुष्य का सामर्थ्य तो और भी अधिक है। उसके हृदय में अनेक प्रकार के तत्त्वों के जानने की इच्छा रहती है और वह जानने के लिये सदा यत्न करता रहता है। वह अपने द्वारा की गई भूलों के परिणामस्वरूप दु:ख भोगता है और यह चाहता है कि इस दु:ख से छुटकारा पा सकूँ। प्रतिदिन हमें भूख-प्यास लगती है, उसके निवारण के लिये हम यत्न करते ही रहते हैं, परन्तु यह भूख-प्यास थोड़े समय के पश्चात् हमें फिर सताती है। तब मनुष्य विचार करता है कि कोई उपाय ऐसा किया जाये कि जिससे इस दु:ख से बहुत समय तक दूर रह सकूँ। जब साधारण भूख-प्यास को मिटाने के लिये हमें परिश्रम करना आवश्यक होता है, तब दु:ख को बहुत अवधि तक दूर करने के लिये तो अत्यन्त पुरुषार्थ करना ही होगा। ऐसी दशा में मनुष्य विचार करता है कि यह शरीर, बाह्य इन्द्रियाँ और अन्त:करण तो साधन मात्र हैं, जैसे भूख-प्यास को दूर करने के लिये अन्न और जल। विचार के पश्चात् उसे निश्चय होता है कि इन शरीर आदि साधनों का अधिष्ठाता कोई भिन्न तत्त्व है। आगे बढ़ने पर वह जान लेता है कि वह अधिष्ठाता=स्वामी=मालिक एक स्वतन्त्र चेतन सत्ता है। इस चेतन सत्ता के अनेक भेद हैं, जिनमें गुणों के आधार पर मनुष्य प्राणी सबसे उत्तम तत्त्व है। इस पर जब मनुष्य विचार करने लगता है, तो उसके सामने अनेक उलझनें खड़ी होती रहती हैं। मनुष्य परस्पर पूछते हैं कि इस शरीर का स्वामी कौन है? उत्तर रूप में अनेक प्रकार की बातें मनुष्य सुनता है। कोई कहता है कि यह शरीर आदि सामग्री ही स्वयं एक तत्त्व है इससे पृथक् कोई चेतन सत्ता नहीं है। दूसरे कहते हैं नहीं- ऐसा नहीं हो सकता कि साधन ही स्वामी हो सके। ये तो उस चेतन सत्ता में औजार मात्र हैं। वह सत्ता शरीर आदि से भिन्न चेतन तत्त्व के रूप में है। फिर विचारक मनुष्य के सामने यह प्रश्न उठता है कि क्या शरीर आदि साधनों के नष्ट हो जाने पर इन साधनों का स्वामी चेतन तत्त्व भी नष्ट हो जाता है अथवा इनसे वह पृथक् बना रहता है। वह प्रतिदिन देखता है कि उसके कार्य करने के साधन टूटते-फूटते रहते हैं, परन्तु वह स्वामी फिर इनका निर्माण करके आगे काम करता रहता है। तब स्वभाव रूप से उसके हृदय में एक जिज्ञासा का जन्म होता है कि यह चेतन तत्त्व है क्या? और यह मरणधर्मा है अथवा सदा बना रहता है। इस जिज्ञासा से मनुष्य व्याकुल हो उठता है और अपने से अधिक ज्ञानियों के पास पहुँचकर इस समस्या को समझने का भरसक यत्न करता है, परन्तु यह प्रश्न इन्द्रिय-ग्राह्य न होने से अतीव जटिल है। इसका समाधान भी सामान्यजन नहीं कर सकते, अपितु आप्त विद्वान् ही कर सकते हैं।

यह प्रश्न और इसका समाधान सदा से इसी रूप में चला आ रहा है। आगे हम इसी समस्या का समाधान करने के लिये ऋषियों-महर्षियों के ग्रन्थों का आधार लेते हैं।

मूल रूप में दो गतियाँ

कठोपनिषद् में यम और नचिकेता का संवाद रूप एक उपाख्यान दिया गया है। नचिकेता जिज्ञासु है और यम उसकी जिज्ञासा का समाधान करता है, इसी में उपनिषद् की सम्पूर्ति हो जाती है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में ऋषि दयानन्द ने लिखा है कि नचिकेता को जीव और यम को परमेश्वर भी समझा जा सकता है-यह अलंकाररूप संवाद है। नचिकेता पूछता है-

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः।।

कठोपनिषद् १.१.२०

अर्थात् हे यम! (मनुष्ये प्रेते) मनुष्य के मर जाने पर (या-इयं-विचिकित्सा) जो यह संशय है कि (एके-अस्ति) कुछ लोग कहते हैं कि मनुष्य का जीव शरीर छोड़ने पर भी नित्यरूप में रहता है और कुछ दूसरे कहते हैं कि (अयम्-न-अस्ति) यह जीव नहीं रहता यह भी शरीर की भाँति नष्ट हो जाता है। इस सन्देह को दूर करने के लिये (त्वया-अनुशिष्टः-अहम्) तुम आप्त विद्वान् यम के द्वारा अनुशिष्टः= शिक्षित हुआ मैं (एतद्) इस संशय रहित तत्त्व को (विद्याम्) जान लूँ यही मेरी श्रेष्ठ अन्तिम जिज्ञासा है।

इस जिज्ञासा की महत्ता को रखते हुए यम ने नचिकेता के सामने इस जिज्ञासा को छोड़ देने के लिये कहा कि बड़े-बड़े विद्वानों के लिए भी यह गम्भीर प्रश्न बना रहता है। तू अपने लौकिक कल्याण को करता रह। परन्तु नचिकेता शम, दम आदि साधन सम्पन्न सच्चा जिज्ञासु था। उसने पुनः निवेदन किया कि इस प्रश्न की गम्भीरता चाहे कुछ भी हो। मैं तो इसी जिज्ञासा की पूर्ति करना चाहता हूँ । आपके समान इस संशय को दूर करनेवाला मुझे कौन गुरु मिल सकता है? जब यम के अनेक प्रलोभन देने पर भी नचिकेता अपनी जिज्ञासा पर अडिग रहा, तब यम ने कहा-

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्। यथा च
मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम।।
योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वायदेहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथा कर्म यथा श्रुतम्।।

कठोपनिषद् २.४.६-७।।

(हन्त) हे नचिकेता! मुझे बड़ा आश्चर्य है और प्रसन्नता है कि तू वास्तव में यम-नियमादि साधन सम्पन्न जिज्ञासु है, अतः (ते) तेरे लिये (इदम्) यह (प्रवक्ष्यामि) उपदेश करूँगा कि (१) एक जो (गुह्यम्-सनातनम्-ब्रह्म) अत्यन्त गोपनीय वेदाभ्यास और योगाभ्यास ही से जानने योग्य (सनातनम्) सदा से नित्य रूप में सबका स्वामी और (ब्रह्म) महान् परमेश्वर है, उसका प्रवचन करूँगा (च) और हे (गौतम) वाणी के रहस्य को समझनेवालों में श्रेष्ठ नचिकेतः तुझे (२) यह भी शिक्षा करूँगा कि (मरणम्) मृत्यु को (प्राप्य) प्राप्त होकर (आत्मा) जीव की जो दशा होती है।।६।।

सब जीवात्मा (यथाकर्म यथाश्रुतम्) अपने-अपने ज्ञान और कर्म के अनुसार परमेश्वर की व्यवस्था के अधीन होकर (अन्ये देहिनः) कुछ शरीरधारी जीव (योनिम्) भिन्न-भिन्न योनियों=शरीरों को (प्रपद्यन्ते) प्राप्त करते हैं तथा दूसरे शरीरधारी जीव अपने ज्ञान और कर्म के अनुसार ही ब्रह्म की व्यवस्था के अधीन होकर (स्थाणुम्) निश्चित एक अद्वितीय परमेश्वर को (अनुसंयन्ति) प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करके मोक्षकाल की अवधि पर्यन्त ब्रह्म के आनन्द का उपभोग करते हुए सर्वत्र स्वच्छन्द भ्रमण करते हैं। उनको उस मुक्ति की अवधि तक मानव शरीर पुनः धारण नहीं करना पड़ता।

[विशेष-'स्थाणु' शब्द का अर्थ प्रायः सभी विद्वान् वृक्षादि स्थावर योनि करते हैं अर्थात् दूसरे जीव इन नीच योनियों को प्राप्त होते हैं, परन्तु हमारे मत में ऐसा अर्थ ठीक नहीं है, क्योंकि यदि वे विद्वान् वृक्षादिस्थावर शरीर को योनि मानते हैं, तो इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में यह बात कही जा चुकी कि वे योनि को प्राप्त हो जाते हैं फिर इस श्लोक के उत्तरार्द्ध में 'योनि' शब्द का कुछ भी वर्णन नहीं, अपितु 'स्थाणु' शब्द दिया गया है, परन्तु स्थाणु का अर्थ इस श्लोक में वृक्ष का ठूंठ नहीं है, अपितु ईश्वर है। ईश्वर ही एक अणु=अत्यन्त सूक्ष्म चेतन तत्त्व ऐसा है जो

कि गति रहित है अत: वह गति रहित होने से स्थाणु कहा गया है। इसके साथ यह बात भी है कि जो मनुष्य मुक्ति के साधन करके परमानन्द को प्राप्त करते हैं, उनका इस श्लोक में वर्णन नहीं मिलता और आगे भी उपनिषद् की समाप्ति पर्यन्त इसका उपदेश नहीं दिया गया। अत: इस श्लोक के उत्तरार्द्ध में उन मनुष्यों का वर्णन किया गया है जो कि अपने-अपने ज्ञान और कर्म के अनुसार परमेश्वर रूपी मोक्ष को प्राप्त करते हैं। गीता तक में भी स्थाणु शब्द का प्रयोग चेतन सत्ता के रूप में हुआ है।।]

इस उपर्युक्त कठोपनिषद् के विवरण से स्पष्ट हो गया कि मृत्यु के पश्चात् जीव की दो गतियाँ होती हैं- (१) एक परमेश्वर की व्यवस्था से जीव अपने कर्मफल भोगने के लिये भिन्न-भिन्न योनियों को धारण करते हैं। (२) दूसरे वे पवित्रात्मा शुद्ध ज्ञान, कर्म और उपासना के द्वारा मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

मृत्यु के समय का वर्णन

महर्षि व्यास ने वेदान्त दर्शन में बड़े विस्तार से मृत्युकाल की अवस्था का वर्णन किया है। हम उसी आधार पर कुछ विवेचन करते हैं-

तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति संपरिष्वक्तः
प्रश्ननिरूपणाभ्याम्।।

वेदान्त ३.१.१

अर्थात् शास्त्रों में प्रश्न और उत्तर रूप में यह कहा गया है कि जीव मृत्यु होने पर जब अगले शरीर को धारण करने के लिये वर्तमान शरीर को छोड़ता है, तब वह अकेला नहीं जाता, अपितु उसके साथ सूक्ष्म शरीर भी जाता है। सूक्ष्म शरीर में ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, पाँच सूक्ष्मभूत, मन और बुद्धि माने जाते हैं। अन्य सूक्ष्म तत्त्वों का भी इन्हीं में समावेश कर लिया जाता है। स्थूल शरीर तो यहीं रह जाता है, जिसका दाह किया जाता है। अब इन तत्त्वों में किस क्रम से कौन पहिले इस शरीर को छोड़ने लगता है-

वाङ् मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च।।

वेदान्त दर्शन ४.२.१।।

यह देखा भी जाता है और शास्त्रों में प्रतिपादित किया गया है कि मरनेवाले जीव की वाणी सबसे पहिले मन में चली जाती है। अब वह बोल नहीं सकता, परन्तु देखना, सुनना, चखना, सूंघना और विचार करना बना रहता है। अब अगली प्रक्रिया देखिये-

अत एव च सर्वाण्यनु।। वेदान्त ४.२.२

जब वाणी का कार्य ठप्प हो गया, तब उसके पीछे-पीछे दूसरी ज्ञानेन्द्रियाँ चक्षु, श्रोत्र, घ्राण और त्वक् भी अपनी सत्ता को शरीर से हटाकर वाणी के अनुसार ही ये भी मन में चली जाती हैं। यहाँ यह नहीं समझना चाहिये कि इन ज्ञानेन्द्रियों का नाश हो गया। नहीं, इन पाँचों की सत्ता बनी रहती है, परन्तु इनका व्यवहार बन्द होकर मन में जाकर सिमट गया। अब आगे का दृश्य देखिये-

तन्मनः प्राण उत्तरात्।। वेदान्त ४.२.३

उन इन्द्रियों के सहित मन प्राणों में चला जाता है। ऐसी दशा में बाहर का सब कार्य बन्द हो गया। केवल प्राण की क्रिया स्थूल शरीर में देखी जा रही है। अब अगली सीढ़ी को निहारिये-

सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः।। वेदान्त ४.२.४

यह प्राण अब मन और इन्द्रियों को साथ लेकर शरीरादि इन सब साधनों के अध्यक्ष जीवात्मा में चला गया, यह मन्तव्य आत्मा के शास्त्रीय प्रवचन से सिद्ध होता है।

अब जीव की अगली गति देखिये-

भूतेषु तच्छ्रुतेः।। वेदान्त ४.२.५

वह जीवात्मा स्थूल शरीर के भीतर विद्यमान सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत सूक्ष्म भूतों में प्रवेश करता है, ऐसा हो जाने पर इस स्थूल शरीर का अधिष्ठाता स्थूल शरीर से बाहर निकल जाता है तथा अपने साथ शरीर के १७ तत्त्वों को भी ले जाता है। यह सूक्ष्म शरीर जीव का आतिवाहिक भी कहा जाता है। अब जीव सुषुप्ति अवस्था में चला जाता है। स्वयं वह इच्छानुसार अगली गति को प्राप्त नहीं कर सकता, किन्तु जीव के कर्मों के अनुसार उसके फलों को भुगाने वाला परमेश्वर जीव के अन्यत्र गमन की व्यवस्था करता है। इससे आगे वे ही दो गतियाँ जीव को प्राप्त होती हैं, जिनका वर्णन कठोपनिषद् के प्रमाणों द्वारा ऊपर लिख चुके हैं।

इस वेदान्त के सिद्धान्त की पुष्टि के लिये हम आगे कुछ अन्य शास्त्रों के भी प्रमाण देते हैं, जिससे विषय का

स्पष्टीकरण होता चला जावे।

तद्बीजात् संसृतिः।। सांख्यदर्शन ३.३

एक देह से दूसरे देह में जाते समय शरीर के कारण सूक्ष्मभूत तत्त्व साथ जाते हैं।

सप्तदशैकं लिङ्गम्।। सांख्यदर्शन ३.९

१७ तत्त्वों (यथा ऊपर वर्णित हैं) का सूक्ष्म शरीर होता है।

न स्थूलमिति नियम आतिवाहिकस्यापि विद्यमानत्वात्।। सांख्य दर्शन ५.१.३

यह नियम नहीं है कि जीव के साथ केवल स्थूल शरीर ही होता है, अपितु दूसरा सूक्ष्म शरीर भी विद्यमान रहता है। इसको आतिवाहिक शरीर कहते हैं अर्थात् देहान्तर को ले जाने के लिये यह सूक्ष्म शरीर आतिवाहिक=सवारी का काम देता है।।

''यह १७ तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर जन्ममरण आदि में भी जीव के साथ रहता है।'' सत्यार्थप्रकाश ९ वाँ समुल्लास।।

आतिवाहिकशरीरयुक्तस्य तस्य।। चरके।।

स बीजधर्मोह्यपराणि देहान्तराण्यात्मनि यातियाति।। चरके (आयुर्वेद)

अर्थात् जीव आतिवाहिक शरीर=सूक्ष्म शरीर से युक्त होता है। वह सूक्ष्म शरीर जीव के एक देह से दूसरे देह को जाते समय बीजतत्त्वों के रूप में साथ जाता है।।

तानि परे तथा ह्याह।। वेदान्त ४.२.१५

शास्त्र बतलाता है कि वे सूक्ष्म शरीर के सब तत्त्व जीव सहित ब्रह्म की व्यवस्था के अधीन हो जाते हैं। जब जीव सुषुप्ति दशा में होने से स्वतन्त्र रूप से गमन नहीं करता, अपितु परमात्मा की व्यवस्था से कर्मफल भोगार्थ अन्य देह में उसका गमन होता है।

अविभागो वचनात्।। वेदान्त ४.२.१६

जिस समय जीव सूक्ष्म शरीर के साथ देह को छोड़कर एक शरीर से गमन करता है, तब उसकी इन्द्रियाँ मन में और मन प्राण में लीन रहते हैं, परन्तु उनमें पृथक् भाव नहीं रहता। हाँ, उनका नाश नहीं होता। तत्त्व रूप में वे सूक्ष्म शरीर में बने रहते हैं।

रश्म्यनुसारी।। वेदान्त ४.२.१८

अब आकाश में सूर्य की रश्मियों-किरणों द्वारा जीव गमन करता है।

तस्मै युज्यन्तामुस्त्रियाः।। यजुर्वेद ३५.२

परमात्मा उस जीव को किरणों द्वारा तब तक गमन कराता है। जब तक कि अगला प्राप्त न होवे। इसलिये अगले ही मन्त्र में कहा है-

विमुच्यन्तामुस्त्रियाः।। यजुर्वेद ३५.३

यहाँ ऋषि दयानन्द इस मन्त्र के भावार्थ में लिखते हैं कि ''जब जीव शरीरों को छोड़ के विद्युत, सूर्य के प्रकाश और वायु आदि को प्राप्त होकर जाते हैं और गर्भ में प्रवेश करते हैं तब किरण उनको छोड़ देती है।''

जिस समय जीव शरीर से निकलकर आकाश, वायु, सूर्य, चन्द्र और विद्युत आदि तत्त्वों में गमन करता है तब इन तत्त्वों के द्वारा उसको कर्मफल भोग नहीं मिलता, क्योंकि ये सब उसको आगे पहुँचाने के साधनमात्र हैं और जीव सुषुप्ति दशा में रहता है। जैसे-

आतिवाहिकास्तल्लिङ्गात्।। वेदान्त ४.३.४

ये वायु आदि तत्त्व तो उस जीव को सवारी का काम देते हैं अन्य कुछ इनका जीव से सम्बन्ध नहीं होता। अगले ही सूत्र में कहा है।

उभयव्यामोहात् तत्सिद्धेः।। वेदान्त ४.३.५

जीव की इस अवस्था में गमनागमन करते हुए व्यामोह की दशा होती है। उसको इन साधनों का कुछ ज्ञान नहीं होता। वह तो परमात्मा की व्यवस्था के आधीन रहता है।

यहाँ एक विशेष बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि जीव के पूर्व शरीर को छोड़कर निकलकर इन तत्त्वों में जाने को शास्त्र की परिभाषा में आरोह=आरोहण कहा जाता है अर्थात् वह आकाश में चढ़ रहा है। जब उसके सूक्ष्म शरीर और पूर्व स्थूल शरीर को मिलाने वाली कड़ियाँ टूटती हैं तब आरोहण काल माना जाता है। इसके सम्बन्ध में टूटने और जीव को अगले स्थूल शरीर धारण करने और सूक्ष्म शरीर का उससे सम्बन्ध होने तक अवरोह=अवरोहण काल माना जाता है। इस आरोहण और अवरोहण प्रक्रिया का उपनिषदों तथा वेदान्तदर्शन में विस्तृत रूप से वर्णन मिलता है। उस सबका उल्लेख इस छोटे से लेख में करना सम्भव नहीं। जिज्ञासु सज्जन उन-उन शास्त्रों का स्वाध्याय करके यथावृत का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

यहाँ तक पूर्व शरीर से जीव के उत्क्रमण=बाहर निकलकर वायु आदि पदार्थों में भ्रमण करने का उल्लेख है। यह भ्रमण निष्प्रयोजन नहीं है, अपितु परमात्मा की व्यवस्थापूर्वक स्थूल शरीर के साथ जो भौतिक सम्पर्क था, उसको छोड़ना होता है। फिर अगले शरीर के स्थूल शरीर के साथ सूक्ष्म शरीर का इन्हीं तत्त्वों का संयोग होना है। इसी कारण यह भ्रमणकाल माना जाता है। जीवात्मा को इस काल का कुछ बोध नहीं है, यह तो वेद से ही जाना जा सकता है और तदनुसार आर्य ग्रन्थों के स्वाध्याय से। जब अगले शरीर के धारण करने के लिये जीव अवरोहण करता है तब भी इन्हीं वायु आदि पदार्थों के द्वारा ही ईश्वर उसको पहुँचाता है।

अब विचारना यह है कि जीव का जो यह आरोह-अवरोहकाल है अर्थात् एक शरीर को छोड़कर वायु आदि पदार्थों में भ्रमण करके दूसरे शरीर में जाना है, इसमें कितना समय लगता है-

नातिचिरेण विशेषात्।। वेदान्ते ३.१.२४

शास्त्र के वचन से पता चलता है इसका समय 'अति चिर'=बहुत देर 'न' नहीं है। थोड़ा ही काल लगता है।

चरक शास्त्र में लिखा है-

देहग्रहणे प्रवर्त्तमानः पूर्वतरमाकाशमेवोपादत्ते ततः क्रमेण व्यक्ततरगुणान् धातून् वाय्यवादिकाँश्च चतुरः सर्व मपितु खल्वेतद्गुणोपादानमणुना कालेन भवति।

शारी. ४-८

अर्थात् देहग्रहण में प्रवर्त्तमान पहिले आकाश का ही ग्रहण होता है फिर क्रम से जिन धातुओं के गुण प्रकट होनेवाले वायु आदि चारों भूतों का यह सब कुछ ग्रहण अतिसूक्ष्म काल में ही हो जाता है। अर्थात् इनमें अधिक काल नहीं लगता।

ऋषि दयानन्द यजुर्वेद अध्याय ३९ के छठे मन्त्र के भावार्थ में लिखते हैं-

''हे मनुष्यो! जब ये जीव शरीर को छोड़ते हैं तब सूर्यप्रकाश आदि पदार्थों को प्राप्त होकर कुछ काल भ्रमण कर अपने कर्मों के अनुकूल गर्भाशय को प्राप्त हो शरीर धारणकर उत्पन्न होते हैं।''

अब प्रश्न यह है कि क्या सब जीवों के भ्रमण का काल एक समान ही अत्यल्प होता है? इसका उत्तर यह है कि कुछ जीवात्मा अपने-अपने कर्मों के अनुसार इस भ्रमणकाल में अनुशयी रूप से अनेक पदार्थों में होते हुए माता के गर्भ में पहुँचते हैं। कुछ अपने कर्मानुसार शीघ्र माता वा पिता के शरीर में जलादि के द्वारा पहुँच जाते हैं। अतः सबका भ्रमणकाल एक समान नहीं। हाँ, एक समता यह है कि यह भ्रमणकाल बहुत थोड़ा होता है, जैसेकि हम ऊपर लिख चुके हैं।

जो जीवात्मा पुनः जन्म धारण न करके मुक्ति को प्राप्त होते हैं, उनका वर्णन इस लेख में नहीं किया गया है।

इस लेख से स्वाध्यायशील बन्धुओं को अनेक प्रकार की जिज्ञासा और संशय उत्पन्न होंगे। यह अच्छा लक्षण है, परन्तु अपनी जिज्ञासा की पूर्ति और सन्देहों की निवृत्ति के लिये वेदान्तदर्शन और तत्सम्बन्धी उपनिषदों का पारायण करना चाहिये। सामान्य प्रश्नोत्तर रूप से उस गम्भीर समस्या का एकमात्र उपाय स्वाध्याय ही है।

इस विषय के अनेक अवान्तर प्रकरण शास्त्रों में वर्णित हैं, हमने उनको इसलिये नहीं लिखा कि इस प्रकार पूरा ग्रन्थ बन जाता। हमने जिज्ञासु बन्धुओं के लिये एक मार्ग रखा है, जिस पर चलकर वास्तविक तत्त्व को समझा जा सकता है, हमारा यत्न तो केवल प्रेरणा देने का ही है।

पढ़ाने में लाड़न नहीं करना योग्य है!

उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते, किन्तु ताड़ना ही करते हैं, परन्तु माता-पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताड़न न करें, किन्तु ऊपर से भय प्रदान और भीतर से कृपा दृष्टि रखें। (सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास २)

मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें। **- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६३**

आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय आबू पर्वत के संस्थापक त्यागी, तपस्वी आर्य संन्यासी

स्वामी धर्मानन्द सरस्वती

आचार्य ओमप्रकाश आर्य

जीवन्ति च म्रियन्ते च मद्विधा क्षुद्रजन्तवः।
अनेन सदृशो लोके न भूतो न भविष्यति।।

अर्थात्- हमारे जैसे लाखों छोटे-छोटे जन्तु प्रतिदिन जन्म लेते हैं और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु इनके समान संसार में न हुआ न होगा। यह कहावत स्वामी धर्मानन्द जी सरस्वती के प्रति अक्षरशः घटित होती है।

वीरभूमि हरियाणा प्रदेश के हिसार जनपद के अन्तर्गत खाबड़ाकलां ग्राम में आज से ८४ वर्ष पूर्व हमारे कथानायक पूज्य स्वामी जी का जन्म चौधरी जियाराम जी बैन्दा के घर दिनांक २५ सितम्बर १९३७ को माता चावली देवी जी की कोख से हुआ था। चौधरी जियाराम जी बैन्दा एवं माता चावली देवी को प्रतापसिंह, शान्ति, पृथ्वीसिंह (स्वामी जी), छोटूराम, रामचन्द्र (पूर्व सांसद) व सुमित्रा, इन चार पुत्ररत्नों व दो पुत्रियों की प्राप्ति हुई।

पृथ्वीसिंह ने अपने गाँव में कक्षा-८ तक अध्ययन किया, कक्षा-१० एवं कक्षा-१२ का अध्ययन फतेहाबाद में किया, तत्पश्चात् दयानन्द कॉलेज, हिसार में आपने बी.ए. तृतीय वर्ष तक अध्ययन किया, कॉलेज में अध्ययन करते हुए आपने डी. ए. वी. कॉलेज द्वारा आयोजित होने वाली धर्मशिक्षा की कई परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण कीं। आपके गाँव में प्रतिवर्ष आर्यसमाज के भजनोपदेशक उपदेश हेतु पधारते थे। उनके आवास व भोजन की व्यवस्था आपके परिवार में ही होती थी। आपके पिताजी एवं चाचा रूपराम जी दृढ़ आर्यसमाजी थे। आपके चाचाजी ने विवाह नहीं किया था व पूरे दिन वैदिक, आर्षग्रन्थों के स्वाध्याय में निरत रहते थे।

गृहत्याग- परिवार आर्यसमाजी होने के कारण आपने घर पर ही ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों व अनेक आर्षग्रन्थों का स्वाध्याय किया, विशेषरूप से योगदर्शन का स्वाध्याय किया (अपने घर से लाया हुआ योगदर्शन आज भी स्वामीजी के पुस्तकालय में सुरक्षित है)। योगदर्शन के विशेष अध्ययन के फलस्वरूप आपके हृदय में वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित हुए और दिनांक २२ सितम्बर १९७२ को सायं ७ बजे गृह का त्याग किया। अपने परिवारजनों को गृहत्याग का समाचार देने के लिये वह पत्र लिखकर एक व्यक्ति को दे आये थे और कहा कि यह पत्र हमारे घर पर पहुँचा देना। स्वयं ने विशेष लक्ष्य की प्राप्ति हेतु गृहत्याग किया है यह बात उन्होंने स्पष्ट रूप से पत्र में लिख दी थी। (पत्र संलग्न है) गृहत्याग से पूर्व उस समय की

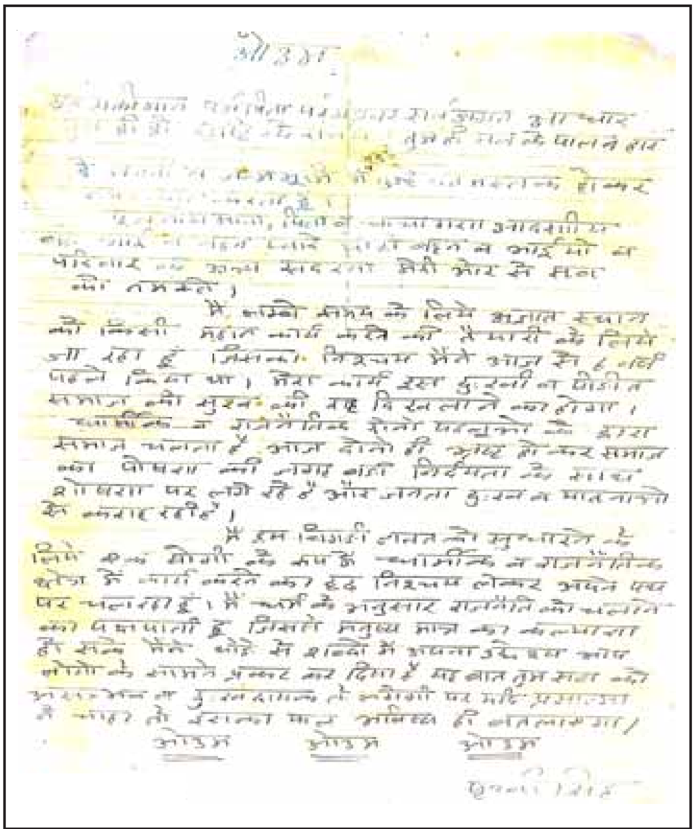

सामाजिक रीति के अनुसार २५ वर्ष की आयु में आपका विवाह हो गया था, इस विवाह से आपके तीन पुत्र भी हुए। **''यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्वा गृहाद्वा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्।।''** यह ब्राह्मण ग्रन्थ का वचन है। अर्थात् जिस दिन वैराग्य प्राप्त हो उसी दिन घर अथवा वन से संन्यास ग्रहण कर लेवे, इसमें विकल्प अर्थात् वानप्रस्थ न करें, गृहस्थाश्रम से ही संन्यास ग्रहण करें। (सत्यार्थप्रकाश पञ्चम समुल्लास से उद्धृत)। गृहत्याग के समय आपकी आयु ३५ वर्ष की थी। गृहत्याग के पश्चात् उत्तरप्रदेश के अनेकों आश्रमों में आप योगाभ्यास हेतु गये। देहरादून के तपोवन आश्रम की ऊपरवाली कुटिया में भी आपने कई दिनों तक निवास करके योगाभ्यास किया। उन दिनों ऋषिकेश में स्वामी योगेश्वरानन्द जी ने अपने आश्रम में एक उपदेशक विद्यालय प्रारम्भ किया था, इस विद्यालय के आचार्य चन्द्रदेव जी थे (आप गुरुकुल झज्जर के स्नातक हैं व वर्तमान में स्वामी चन्द्रवेश जी के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा संन्यास आश्रम गाजियाबाद में निवास कर रहे हैं), इन्हीं आचार्य चन्द्रदेवजी ने आपको नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा देकर ब्रह्मचारी कपिलदेव नाम प्रदान किया। इस आश्रम में कुछ माह अध्ययन करने के पश्चात् उत्तरप्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले के गाँव टन्ढेना में आप योगाभ्यास व स्वाध्याय करते रहे एवं कई युवकों को वैदिक धर्म में दीक्षित किया एवं ग्राम में आर्यसमाज की स्थापना की। इसी गाँव के नवयुवक श्री नरेन्द्र भी आपके सान्निध्य में ही दृढ़ आर्य बने, आगे चलकर यही नरेन्द्र जी आर्य निर्मात्री सभा उत्तरप्रदेश के कई वर्षों तक प्रधान रहे। वहाँ से आप बागपत के पास मवीकला गाँव में आये व यहाँ भी आर्यसमाज की चारदिवारी, कार्यालय व यज्ञशाला के चबूतरे का निर्माण जनसहयोग से करवाया।

आबूपर्वत में आगमन- उत्तरप्रदेश में भ्रमण करते हुए आबूपर्वत के वेदधाम निवासी आर्यसंन्यासी स्वामी काव्यानन्द जी से आपका सम्पर्क हुआ। ऋषि दयानन्द जी की जीवनी के अध्ययन से भी ज्ञात हुआ था कि ऋषि दयानन्द ने भी आबूपर्वत की विभिन्न गुफाओं में रहकर योगाभ्यास किया था। योगाभ्यास हेतु आबूपर्वत उत्तम स्थान है यह निश्चय करके आप सन् १९७५ के प्रारम्भ में आबू पर्वत के वेदधाम में पधारे। स्वामी काव्यानन्द जी की स्वीकृति प्राप्त करके आपने इसी परिसर में आर्यगुफा नामक एक कुटिया का निर्माण करवाया व ६ वर्ष तक इस स्थान पर ही रहते हुए घोर तपस्या एवं योगाभ्यास करते हुए आर्षग्रन्थों का स्वाध्याय किया। यहाँ रहते हुए ही आपके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि आबूपर्वत में भी आर्यसमाज की स्थापना होनी चाहिये। तब नक्की झील के उत्तरी तट पर आपने चिन्तामणि नामक साधु की गुफा के समीप आर्यसमाज की स्थापना की। तब यहाँ के पौराणिक मठाधीशों ने बहुत विरोध किया। स्वामी जी पर आक्रमण किया गया, पुलिस थाने में केस भी दर्ज हुए थे। किन्तु इस नरशार्दूल ने सभी विरोधियों को परास्त करते हुए ऐतिहासिक पर्वतीयस्थल आबूपर्वत पर आर्यसमाज मन्दिर का सफलतापूर्वक निर्माण करवाकर वैदिक धर्म के पवित्र ओम्ध्वज को आरोपित किया। विवेक तथा वैराग्य में निरत रहकर एकान्तिक तप साधना के अनन्तर अन्त:करण में अपने सामाजिक कर्त्तव्य के निर्वाह करने की सात्त्विक कामना जागृत होने पर १९८४ में एकमासीय विशाल आवासीय आर्यवीर दल का शिविर आयोजित किया, जिसमें गुजरात व राजस्थान के लगभग ३०० नवयुवकों ने भाग लेकर वैदिकधर्म के सिद्धान्तों का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इस शिविर में युवकों को उपदेश व प्रेरणा प्रदान करने के लिये अनेकों आर्यनेता व संन्यासी भी पधारे थे। स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती (गुरुकुल झज्जर), स्वामी आनन्दबोध जी (सार्वदेशिक सभा के तात्कालिक प्रधान), आर्यवीर दल के संचालक देवव्रत जी आदि।

संन्यास दीक्षा- शिविर समाप्ति के पश्चात् स्वामी ओमानन्द जी ने आपको प्रेरणा प्रदान करते हुए कहा कि शिविर के माध्यम से अस्थायी कार्य होता है। आपको यहाँ गुरुकुल की स्थापना करनी चाहिये जिससे वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार का स्थायी कार्य हो सके। दिनांक १७ जून १९८४ को पूज्य स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती (गुरुकुल झज्जर) ने आपको संन्यास दीक्षा देकर स्वामी धर्मानन्द सरस्वती नाम प्रदान किया।

आर्ष गुरुकुल की स्थापना- संन्यास दीक्षा के बाद स्वामी जी ने गुरुकुल की स्थापना का दृढ़ निश्चय करके

उपयुक्त भूमि की खोज आरम्भ की। आबूपर्वत के अलग-अलग स्थानों पर कई जमीनों को देखने के पश्चात् एक हजार वर्ष प्राचीन विश्व प्रसिद्ध देलवाड़ा जैन मन्दिर से एक किलोमीटर की दूरी पर अरावली गिरीमालाओं के मध्य पन्द्रह बीघा भूमि दानदाताओं के सहयोग से खरीदी गई, वर्तमान में यहीं पर गुरुकुल स्थित है। यह स्थान विद्याध्ययन व योगाभ्यास हेतु यजुर्वेद के निम्न मन्त्र के अनुरूप है **''उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत।।''** (यजु. २६/१५)

अर्थात् जो मनुष्य पर्वतों के निकट और नदियों के मेल में योगाभ्यास से ईश्वर की और विचार से विद्या की उपासना करे वह उत्तम बुद्धि वा कर्म से युक्त विचारशील बुद्धिमान् होता है।

आर्षविद्या के प्रचारक मूर्धन्य आर्य संन्यासी पूज्य स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती (गुरुकुल झज्जर) के करकमलों द्वारा १ जून १९८६ को गुरुकुल का शिलान्यास किया गया। इस कार्यक्रम में उपस्थित आर्यसज्जनों ने स्वामीजी से पूछा इस बीहड़ वन में जहाँ ५० व्यक्तियों के ठीक से बैठने का भी स्थान नहीं हैं, इस स्थान पर गुरुकुल का निर्माण कैसे होगा? तब दृढ़ निश्चयी स्वामी जी ने कहा कि परमात्मा की कृपा से सब कार्य समय पर सम्पन्न होंगे १९८७, १९८८, १९८९ तीन वर्ष तक आबूपर्वत में वर्षा नहीं हुई थी, पुनरपि देलवाड़ा से गुरुकुल तक गाड़ी आने हेतु कच्चे मार्ग का निर्माण, ६०० फीट नीचे झरने के समीप कुएं का निर्माण, एक हॉल, तीन कमरों का निर्माण एवं तीन गुफाओं को आवास योग्य बनाकर २७ मई १९९० रविवार को छात्रों के प्रवेश व उपनयन व वेदारम्भ संस्कार के साथ गुरुकुल में पठन-पाठन का विधिवत् शुभारम्भ हुआ। इस ऐतिहासिक घटनाक्रम को परोपकारिणी सभा के तत्कालीन सम्पादक श्रद्धेय आचार्य डॉ. धर्मवीर जी ने ''आबू पर्वत पर नया सूर्योदय आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय'' के नाम से एक सम्पादकीय लेख लिखकर जुलाई १९९० में प्रकाशित किया था, पाठक इस लेख को परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'कहाँ गये वो लोग' के पृष्ठ १२० से १२३ तक पढ़कर ज्ञानवर्धन कर सकते हैं। गुरुकुल प्रारम्भ होने पर उसे गति देने के लिये ४५ दिन तक अनौपचारिक आचार्य के रूप में डॉ. धर्मवीर जी (परोपकारिणी सभा) ने अपना अमूल्य समय भी दिया। तत्पश्चात् औपचारिक रूप में आचार्य भीमसेन वेदवागीश जी नियुक्त हुए। आचार्य भीमसेन जी वेदवागीश के शब्दों में-

धर्मानन्दो महात्यागी बालानां हितचिन्तकः।
गुरुकुलमरचयत् अर्बुदपर्वतमस्तके।।

अर्थात्- महान् त्यागी, तपस्वी पूज्य स्वामी धर्मानन्द जी ने बालकों के हित के लिये अरावली शृंखला के मस्तक आबू पर्वत पर एक गुरुकुल की रचना की।

मुझ लेखक को भी गुरुकुल के प्रथम सत्र का विद्यार्थी होने का सौभाग्य प्राप्त है।

स्थापना का उद्देश्य- महर्षि दयानन्द सरस्वती का मन्तव्य है कि यदि संस्कृत भाषा व वेदों का पठन-पाठन समाप्त हो गया तो संसार का बड़ा अनिष्ट हो जायेगा, क्योंकि समस्त ज्ञान-विज्ञान वेदों में ही स्थित है। महर्षि के इस वचन से प्रेरणा प्राप्त कर संस्कृत भाषा एवं संस्कृत विद्या के पठन-पाठन के लिये इस गुरुकुल की स्थापना पूज्य स्वामी धर्मानन्द जी द्वारा की गई। यहाँ पर देववाणी संस्कृत भाषा के माध्यम से वेद, ब्राह्मणग्रन्थ, दर्शन , उपनिषद्, निरुक्त तथा व्याकरण आदि सभी विषयों को महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट शैली से पढ़ना-पढ़ाना हो रहा है। साथ ही प्राचीन आश्रम-प्रणाली के अनुसार दिनचर्या का पालन करवाते हुए बलवान्, सदाचारी, धर्मात्मा, देशभक्त अनेकों विद्वान् तैयार किये जा चुके हैं/किये जा रहे हैं।

सफल संचालक- जून १९९० में गुरुकुल प्रारम्भ होने के पश्चात् गुरुकुल के भवन-निर्माण एवं संचालन हेतु गुजरात एवं राजस्थान के विविध नगरों में प्रवास करके, वहाँ के आर्यसज्जनों को प्रेरणा प्रदान करके दान लाना, गुरुकुल के ३२ कमरों का निर्माण करवाना, गोशाला का निर्माण करवाकर ५० से ६० गीर नस्ल की गायों को लाकर उनका संवर्धन व संरक्षण करना, पाकशाला, भोजनशाला, दो स्नानागार, चार जलागार, शौचालय आदि समस्त आवश्यक भवनों के निर्माण कार्य पूज्य स्वामीजी ने ही सम्पन्न किये थे। गुरुकुल के परिसर में ही सम्पूर्णरूप से संगमरमर के प्रस्तर से निर्मित बारह स्तम्भों की एक

अनुपम यज्ञशाला का निर्माण सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के यशस्वी प्रधान सुरेशचन्द्र जी अग्रवाल को प्रेरणा देकर उनके पूज्य पिताजी स्व. श्री बंशीधर जी अग्रवाल की पुण्यस्मृति में सन् २००९ में करवाया। पूज्य स्वामी जी के तप एवं पुरुषार्थ के कारण गुरुकुल में किसी भी भौतिक वस्तु की कमी नहीं हैं।

गुरुकुल की विशेषताएँ- आबूपर्वत जैसी प्राचीन रमणीय तपस्थली की पर्वतमालाओं के मध्य सुरम्य घाटी में १५ बीघा का विशाल वृक्षों से सुसज्जित हरा-भरा परिसर, सात्त्विक भोजन, विद्वान् आचार्यों द्वारा अध्यापन कार्य, चार हजार पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय, कम्प्यूटर एवं संगीत शिक्षण की उत्तम व्यवस्था, छात्रों द्वारा संस्कृत सम्भाषण किया जाता है। ग्रीष्मकाल में आर्यवीर दल के शारीरिक एवं बौद्धिक पाठ्यक्रम का छात्रों को प्रशिक्षण दिया जाता है। वर्तमान में ९५ ब्रह्मचारी आर्षपाठ विधि से विद्याध्ययन कर रहे है। गुरुकुल गोशाला में ६० गीर नस्ल की उत्तम गायों का लालन-पालन। इन गायों से प्राप्त दूध का छात्रों को नि:शुल्क वितरण किया जाता है।

अर्थ शुचिता- गुरुकुल को प्राप्त होने वाले लाखों-करोड़ों रुपयों का हिसाब रखना, एक रुपये का भी दुरुपयोग न हो उसका ध्यान रखना स्वामीजी का स्वभाव था। स्वामीजी को प्राप्त होनेवाली सम्पूर्ण दक्षिणा को भी वे गुरुकुल के खाते में जमा करवा देते थे, उनका व्यक्तिगत बैंक बैलेन्स शून्य था। स्वामी जी जैसे महान् त्यागी व्यक्ति संसार में विरले ही होते हैं। स्वामीजी ने बहुत ही बुद्धिमत्ता व शुचिता के साथ गुरुकुल का संचालन किया था। गुरुकुल की कभी भी देनदारी नहीं रही है। एक रुपया भी उधार नहीं है। उधार रखकर काम करना उनके स्वभाव में नहीं था। वे कहा करते थे-जितनी गुदड़ी हो उतने ही पाँव पसारने चाहिए। मनुस्मृतिकार कहते हैं कि-

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः।।मनु. ५.१०६

अर्थात् जो धन संग्रह के विषय में पवित्र है अर्थात् अधर्म अन्याय से धन ग्रहण नहीं करता, वही सर्वश्रेष्ठ शुद्ध पवित्र है।

सादगी- वे सदा कोरा लट्ठा (मोटा सूती) कपड़ा ५० रूपये मीटर भाववाला खरीदकर लाया करते थे, स्वयं भगवा रंग उस पर चढ़ाते थे। उनके एक जोड़ी जूते-चप्पल कई वर्षों तक चलते थे। गुरुकुल प्रारम्भ होने से पूर्व १९८६ से १९९० चार वर्षों तक जब गुरुकुल का निर्माण कार्य चल रहा था तब आर्यसमाज में स्वयं भोजन बनाकर वे चार किलोमीटर पैदल चलकर गुरुकुल आया करते थे और उसी भोजन को दोपहर में खाकर सायंकाल पुनः पैदल चलकर आर्यसमाज में जाकर भोजन बनाते थे। गुरुकुल बनने से पहले १९७५ से १९९० तक उन्होंने कभी घी व दूध खरीदकर नहीं खाया था।

वे कहा करते थे दानदाताओं के दान का प्रयोग दिखावे में कभी भी खर्च नहीं करना चाहिये। वे एक कहावत प्रायः कहा करते थे कि ऊँट की गरदन लम्बी होती है तो काटने के लिए नहीं होती है अर्थात् यदि कोई श्रद्धालु आर्यसज्जन दान करता है तो उस सज्जन से भी आवश्यकता के अनुसार ही दान लेना चाहिये, अधिक नहीं।

पिछले तीस वर्षों में कभी भी उनका भोजन अलग से नहीं बनाया गया, वह स्वयं भी उसी भोजन को ग्रहण करते थे, जिस भोजन को गुरुकुल के ब्रह्मचारी किया करते थे।

सत्यनिष्ठ

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।
(विदुर नीति ५.१५)

अर्थात्- प्रिय बोलने वाले चाटुकार पुरुष सुगमता से प्राप्त होते हैं, परन्तु अप्रिय लगनेवाले पथ्यरूप हितकारी उचित वचन कहनेवाले और सुनने वाले दोनों दुर्लभ होते हैं। स्वामी जी ने कभी भी सिद्धान्तों से समझौता नहीं किया, वे बड़े से बड़े राजनेता, संन्यासी, श्रेष्ठी आदि से सत्य कहने में भय, शंका, लज्जा नहीं करते थे। आबूपर्वत में ब्रह्माकुमारी सम्प्रदाय का अन्तर्राष्ट्रीय मुख्यालय है। इस सम्प्रदाय के कार्यक्रमों में अनेक राजनेता, धर्मगुरु आते रहते थे, उनमें से कुछेक सज्जन गुरुकुल में भी पधारते थे, तब स्वामीजी सबसे पहले कठोर शब्दों में ब्रह्माकुमारी सम्प्रदाय की वास्तविकता व सिद्धान्तों को बतलाते हुए आनेवाले महानुभावों को कहते थे कि आप वहाँ जाकर

अपने भाषण में उस सम्प्रदाय की प्रशंसा मत करना किन्तु वहाँ भी वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करना। स्वामीजी ने अनेकों बार ब्रह्माकुमारी सम्प्रदाय को शास्त्रार्थ हेतु आह्वान् किया था, किन्तु उस सम्प्रदाय के व्यक्ति शास्त्रार्थ हेतु कभी भी तैयार नहीं हुए।

योग साधक- गृहत्याग के बाद अनेकों वर्षों तक वह भालू, तेन्दुआ, साँप, बिच्छु, अजगर आदि हिंसक जन्तुओं से परिपूर्ण भयानक वन में अकेले रहकर योगाभ्यास व तपस्या करते रहे, उनका दृढ़ मत था जब मेरा किसी प्राणी से वैरभाव नहीं है तब तक अन्य प्राणी भी मुझसे वैर नहीं रख सकता है। वे योगदर्शन के तृतीय पाद में वर्णित सिद्धियों को अक्षरशः सत्य मानते थे। गुरुकुल के चारों ओर भयानक वन्यजीव अभ्यारण्य है, इसमें अनेकों हिंसक जन्तुओं का निवास है, अनेकों बार वन्यजीवों से ब्रह्मचारियों का आमना-सामना हुआ, परन्तु पिछले तीस वर्षों में किसी भी ब्रह्मचारी या गुरुकुल परिसर में निवास कर रहे किसी भी व्यक्ति को किसी जीव-जन्तु ने कोई हानि नहीं पहुँचाई है। यह उनकी योग-साधना का ही प्रभाव था। स्वामीजी योगाभ्यास नियमित रुप से करते थे। सायंकाल सात बजे से अपने कमरे में ध्यान-योग में संलग्न हो जाते थे। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठकर नित्यकर्म से निवृत्त होकर ईश्वरोपासना में बैठ जाते थे तथा आठ बजे से पहले कभी कक्ष से बाहर नहीं आते थे।

आदर्श संन्यासी- पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा मया परित्यक्ता, मत्तः सर्वभूतेभ्योऽभयमस्तु।। (शतपथ)

पुत्र-शिष्य आदि का मोह, धन-प्राप्ति की इच्छा, समाज में मेरी प्रतिष्ठा हो इन तीनों प्रकार की ऐषणाओं को मैं आज से छोड़ रहा हूँ, सभी प्राणी मुझसे अभय हों। संन्यास दीक्षा के समय की जानेवाली इस प्रतिज्ञा को स्वामीजी ने अपने सम्पूर्ण जीवन में चरितार्थ किया। गृहत्याग के पश्चात् केवल एक बार वह आर्यसमाज की स्थापना हेतु अपनी जन्मभूमि में गये थे। कुछ वर्षों के अन्तराल में पूर्वाश्रम के परिवार के लोग जब गुरुकुल में स्वामीजी के दर्शन हेतु आते थे, तब वह उनको भी सन्ध्या, हवन, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करने की प्रेरणा करते थे। उनसे कभी भी सांसारिक बात नहीं किया करते थे। गुरुकुल के निर्माण व संचालन के निमित्त दान प्राप्ति के लिये कभी भी उन्होंने सिद्धान्तों से समझौता नहीं किया। वे कभी भी किसी भी महिला का नाम लेकर नहीं बुलाते थे, बड़ी उम्र की महिलाओं को माताजी कहकर व छोटी उम्र की महिला को बहिनजी कहकर बुलाया करते थे।

स्नातक व शिष्य परम्परा- आचार्य ओमप्रकाश आर्य (पिछले ३१ वर्षों से गुरुकुल आबू में अध्ययन एवं निरन्तर निःशुल्क अध्यापन एवं व्यवस्थापक का कार्य), डॉ. अभिमन्यु (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर), कीर्तिचन्द्र शास्त्री (प्रधानाचार्य आदर्श विद्यालय, कच्छ मांडवी), पं. लाभेन्द्र शास्त्री (पौरोहित्य कर्म, अहमदाबाद), अशोक शास्त्री, डॉ. हंसराज शास्त्री, आचार्य गगेन्द्र शास्त्री, डॉ. केशरमल शास्त्री, डा. रामदयाल शास्त्री आदि अनेकों स्नातक व सैकड़ों पूर्व छात्र वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में संलग्न हैं।

महाप्रयाण की ओर- सन् २०१६ से स्वामी जी अल्ज़ाइमर (भूलने की बिमारी) से पीड़ित थे, इस रोग की दवाई पिछले पाँच वर्षों से वे निरन्तर ले रहे थे। यह रोग उनकी माताजी व बड़ी बहन को भी था। १८ जनवरी २०२१ को स्थानीय डॉक्टर को दिखाने पर पता चला कि उनके शरीर में रक्त की कमी है, स्थानीय डॉक्टर की सलाह पर उन्हें गाँधीनगर, गुजरात ले जाया गया, वहाँ स्वामीजी को चार बोतल रक्त चढ़ाने के पश्चात् विभिन्न चिकित्सकीय परिक्षणों से ज्ञात हुआ कि स्वामीजी के आमाशय में अन्तिम स्थिति का कैंसर है। (स्वामी जी के पूर्व उनके बड़े भाई, छोटे भाई एवं छोटी बहन का कैंसर से देहान्त हो चुका है) जाँच रिपोर्टों को महावीर कैंसर हॉस्पिटल जयपुर, दिल्ली एम्स, जोधपुर एम्स एवं अहमदाबाद के अनेक विशेषज्ञ डॉक्टरों को दिखाया गया। रिपोर्ट दिखाये जाने के बाद सभी डॉक्टरों ने कहा कि रोग के अधिक फैल जाने के कारण व स्वामीजी की उम्र अधिक होने के कारण अब इस रोग का उपचार सम्भव नहीं है। तब २५ जनवरी २०२१ को स्वामी जी को गुरुकुल में लाकर सेवा-शुश्रूषा एवं चिकित्सा की गई और अन्त समय में जब माघी पूर्णिमा का चन्द्रमा पूर्ण यौवन के साथ निर्मल आकाश में प्रकाशित हो रहा था, उसी समय ब्राह्ममुहूर्त में ३ बजकर

५ मिनट पर दिनांक २८.०२.२०२१ को स्वामीजी ने नश्वर शरीर त्याग दिया।

महर्षि दयानन्द के आदर्श भक्त, वैदिक आर्षपरम्परा के सुदृढ़ उन्नायक के रूप में पूज्य स्वामी जी का जीवन सदा प्रेरक बना रहेगा। आर्ष गुरुकुल आबूपर्वत की स्थापना करके एवं दशकों तक इसका सफल संचालन करके आपने आर्षपरम्परा के संरक्षण एवं समुन्नयन के लिए आने वाले युगों तक का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। यह गुरुकुल आपकी कालजयी कीर्ति का स्वर्ण स्तम्भ है।

मेरे जीवन में तथा मुझ जैसे अनेकों छात्रों के जीवन में माता के बाद कदाचित् माता से भी बढ़कर उपकार करनेवाले गुरुवर पूज्य यतिश्रेष्ठ स्वामी महाराज के देवलोक गमन करने से मैं तथा समस्त गुरुकुल परिवार अनाथ जैसा अनुभव कर रहे हैं। उनका देवलोक गमन मेरी, गुरुकुल की और समाज की अपूरणीय क्षति है।

मैं पूज्य गुरुवर यतिश्रेष्ठ के प्रति विनम्र श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

जयन्ति ते सुकृतिनः तपसिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्।।

आर्ष गुरुकुल आबूपर्वत

एक आहुति अपने आचार्य के लिए........

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की निःशुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें। **कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री**

शोक समाचार

१. पण्डित लेखराम वैदिक मिशन के सदस्य एवं आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्ता श्री लक्ष्मण जिज्ञासु की पूज्या माता **श्रीमती मायादेवी जी** का दिनांक २६ फरवरी २०२१ को निधन हो गया, उनका अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति के साथ उनके निवास स्थान पर किया गया। परोपकारिणी सभा दिवङ्गतात्मा को विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है।

२. परोपकारिणी सभा के सभासद, वरिष्ठ पत्रकार एवं अमर उजाला वाराणसी के सम्पादक श्री वीरेन्द्र आर्य के पिताजी **श्रीपाल आर्य** (८६ वर्ष) का बुधवार ३ मार्च २०२१ को निधन हो गया। वे पिछले कुछ दिनों से बीमार थे और जयपुर के सवाई मानसिंह अस्पताल में भर्ती थे। उन्होंने आर्य समाज के माध्यम से समाज सेवा के क्षेत्र में खूब काम किया। समाज सुधार की दृष्टि से उन्होंने सैकड़ों कविताएं लिखीं। हिंदी सत्याग्रह और गौरक्षा आन्दोलन सहित विभिन्न आन्दोलनों में जेल गए। वे न्याय पंचायत के सरपंच भी रहे। उनका अन्तिम संस्कार ४ मार्च २०२१ गुरुवार बड़ौत, जिला बागपत में हुआ। उत्तर प्रदेश के उप मुख्यमन्त्री श्री केशव प्रसाद मौर्य ने श्री श्रीपाल आर्य के निधन पर गहरा शोक व्यक्त किया। उन्होंने शोक सन्तप्त परिवार के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हुए दिवङ्गत आत्मा की शांति की ईश्वर से प्रार्थना की। परोपकारिणी सभा की ओर से विनम्र श्रद्धाञ्जलि!

स्थापना-दिवस-२०२१

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा, अजमेर ने दिनांक २७ फरवरी २०२१ तथा २८ फरवरी २०२१ को अपना द्विदिवसीय स्थापना दिवस समारोह मनाया। यह कार्यक्रम परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान के प्रांगण में उत्साहपूर्वक सम्पन्न हुआ। देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों से आर्यसज्जन तथा विद्वतजजन यहाँ पधारे। उनके आवास तथा भोजन की व्यवस्था परोपकारिणी सभा द्वारा नि:शुल्क की गयी। कार्यक्रम में पधारे परोपकारिणी सभा के सदस्य तथा विद्वानों में डॉ. वेदपाल जी, श्रीमान् ओममुनि जी, श्री कन्हैयालाल आर्य, डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी' श्रीमती ज्योत्स्ना 'धर्मवीर' आचार्य श्यामलाल जी, आचार्य घनश्याम जी, आचार्य अंकित प्रभाकर, पं. भूपेन्द्र सिंह जी तथा पं. लेखराज जी आदि प्रमुख हैं। कोरोना महामारी को देखते हुये इस पूरे कार्यक्रम का प्रसारण फेसबुक, यू-ट्यूब व जूम आदि के माध्यम से भी प्रसारित किया गया। यह कार्यक्रम तीन सत्रों में सम्पन्न हुआ।

कार्यक्रम के प्रथम दिवस में प्रात:काल ऋषि उद्यान की यज्ञशाला में बृहद् यज्ञ का आयोजन हुआ। तत्पश्चात् परोपकारिणी सभा के सदस्य डॉ. राजेन्द्र विद्यालङ्कार का व्याख्यान आभासी रूप से हुआ। जिसमें डॉ. राजेन्द्र जी के द्वारा ऋषि दयानन्द के कार्यों की विस्तृत चर्चा की गयी। इसके बाद सरस्वती भवन के प्रांगण में ध्वजारोहण का कार्यक्रम हुआ। सभा के वरिष्ठ उपप्रधान श्री ओममुनि जी ने ध्वजारोहण किया तथा उन्होंने आगन्तुक आर्यजनता को सम्बोधित करते हुए स्थापना दिवस समारोह की घोषणा की।

इसके बाद १०:३० बजे के लगभग सरस्वती भवन में कार्यक्रम का प्रथम सत्र प्रारम्भ हुआ। जिसके संचालक श्री कन्हैयालाल जी आर्य, मन्त्री परोपकारिणी सभा रहे तथा इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. सुरेन्द्र कुमार पूर्व कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार तथा संरक्षक परोपकारिणी सभा ने की। सत्र का प्रारम्भ पं. भूपेन्द्र सिंह जी तथा पं. लेखराज जी के सुमधुर भजनों से हुआ। व्याख्याता के रूप में आचार्य घनश्याम जी तथा श्रीमान् नवीनचन्द्र मिश्र जी रहे। जिन्होंने ऋषि दयानन्द की दूरदृष्टि तथा आर्यसमाज के इतिहास की चर्चा की। आचार्य घनश्याम जी ने परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित गुरुकुल की विशेषताओं की चर्चा की। अन्त में अध्यक्षीय उद्बोधन डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी का आभासी रूप से हुआ जिसमें उन्होंने बताया कि ऋषि ने परोपकारिणी सभा की संरचना लोकतान्त्रिक आधार पर की है। इसलिये सभी को मिलकर तथा आम सहमति से कार्य करना चाहिये। अन्यथा संगठन के बिखरने की सम्भावना होती है। तदोपरान्त मन्त्री जी के द्वारा शान्तिपाठ कराकर प्रथम सत्र का समापन किया गया।

प्रथम दिवस अर्थात् २७-०२-२०२१ के द्वितीय सत्र के संयोजक डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी' रहे। इस सत्र की अध्यक्षता श्रीमान् ओममुनि जी ने की। व्याख्याता के रूप में स्वामी विष्वङ् जी ने ऋषि दयानन्द के आध्यात्मिक विचारों की चर्चा करते हुये एक सारगर्भित व्याख्यान दिया। आचार्य श्यामलाल जी के द्वारा भी एक जोशीला व्याख्यान दिया गया जिसमें संस्कृत व्याकरण को पढ़ना कितना आवश्यक है तथा गुरुकुलीय व्यवस्था कितनी उन्नत है, यह बताया गया। डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी' जी ने आर्यसमाज के अनेकों पत्रकारों और इतिहास सम्बन्धी चर्चा की। अन्त में अध्यक्षीय भाषण श्रीमान् ओममुनि जी का हुआ। जिसमें आर्यसमाज के भविष्य को लेकर महत्त्वपूर्ण निर्देश दिये गये।

द्वितीय दिवस अर्थात् २८-०२-२०२१ को प्रात:काल यज्ञशाला में यज्ञ सम्पन्न हुआ। तदोपरान्त डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी का व्याख्यान वर्चुअल रूप से हुआ। उन्होंने मनुष्य को किन प्रवृत्तियों से बचना चाहिये, यह बताया।

तृतीय सत्र अर्थात् समापन सत्र १०:३० बजे के लगभग प्रारम्भ हुआ। इस सत्र का संयोजन श्री कन्हैयालाल जी आर्य (मन्त्री) ने किया तथा अध्यक्षता डॉ. वेदपाल, प्रधान परोपकारिणी सभा ने की। वक्ता के रूप में अंकित प्रभाकर जी, डॉ. राजेन्द्र विद्यालङ्कार जी तथा डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी' रहे। श्री वासुदेव आर्य द्वारा एक सुमधुर गीत भी प्रस्तुत किया गया। सत्र का प्रारम्भ पं. भूपेन्द्र सिंह जी तथा पं. लेखराज जी के सुमधुर भजनों से हुआ। डॉ. राजेन्द्र विद्यालङ्कार ने परोपकारिणी सभा के उद्देश्यों की व्याख्या की, डॉ. वेदप्रकाश जी ने आर्यसमाज में पत्रकारिता के इतिहास की चर्चा की। अन्त में अध्यक्षीय उद्बोधन डॉ. वेदपाल जी का हुआ, जिसमें उन्होंने आर्यसमाज की वर्तमान पीढ़ी में सैद्धान्तिक गहराई का अभाव बताया तथा उसे कैसे सुधारा जाय इसके लिये भी निर्देश दिये। अन्त में मन्त्री श्री कन्हैयालाल जी के द्वारा धन्यवाद ज्ञापितकर सत्र का समापन किया गया।

इस पूरे कार्यक्रम को परोपकारिणी सभा के आधिकारिक फेसबुक पेज तथा यू-ट्यूब चैनल पर देखा जा सकता है।

कन्हैयालाल आर्य, मन्त्री

इजराईली इतिहासकार द्वारा महर्षि दयानन्द के कार्य की प्रशंसा

वेदप्रकाश आर्य

टिप्पणी- महर्षि दयानन्द के कार्यों और विचारों की उपेक्षा कर पाना दुनिया के किसी भी इतिहासज्ञ और दार्शनिक के लिये न सम्भव हो सका है और न हो सकेगा। ऋषि दयानन्द इतिहास का वो दस्तावेज़ है जिसके बगैर १९ वीं और २० वीं सदी का इतिहास लिखा ही नहीं जा सकता। धर्म पर प्रश्नचिह्न भी लगाया जा सकता है, यह सर्वप्रथम ऋषि दयानन्द ने संसार को बताया। धर्म के ठेकेदारों ने अपने-अपने धर्मशास्त्रों की व्याख्यायें बदलना शुरु कर दीं। ऋषि ने पाखण्ड के महलों की बुनियाद पर चोट की तो बड़े-बड़े महल धराशायी हो गये। ऋषि हर उस व्यक्ति के अधिकार के लिये खड़े हो गये जिसे समाज ने वंचित समझ लिया था। -सम्पादक

सुप्रसिद्ध इज़रायली विद्वान्, लेखक और इतिहासकार श्री युवाल नोह हरारी ने हाल ही में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'होमो डेयस ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टुमॉरो' (अर्थात् महामानव अथवा मानव-ईश्वर: आनेवाले कल का संक्षिप्त इतिहास) में महर्षि दयानन्द के विचारों और कार्य की महती प्रशंसा की है।

इस सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द के विचारों के बारे में प्रो. युवाल हरारी ने जो कुछ लिखा है उसका विस्तार से उल्लेख करने से पूर्व लेखक का पूर्ण परिचय प्राप्त करना और उनके कृतित्व से अवगत होना उचित होगा।

प्रोफेसर युवाल नोह हरारी ४४ वर्ष के इज़रायली विद्वान्, लेखक, विचारक और इतिहासकार हैं। आपने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है और वर्तमान में हिब्रू विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अन्तर्गत शोध एवं अध्यापन कर रहे हैं। आप विश्व और विज्ञान इतिहास के विशेषज्ञ हैं। आपने निम्न तीन पुस्तकें लिखी हैं जो कि बौद्धिक वर्ग में सारे संसार में बेहद लोकप्रिय हुई हैं-

(१) होमो सैपियन्स: ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ ह्यूमनकाइन्ड [२०११ में प्रकाशित]

(२) होमो डेयस: ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टुमॉरो (२०१६ में प्रकाशित)

(३) 21 Lessons of the 21st century

(२०१८ में प्रकाशित)

उपरोक्त सभी पुस्तकें बैस्ट सेलर्स की श्रेणी में हैं और उनकी चालीस भाषाओं में प्रकाशित २.७५ करोड़ प्रतियाँ बिक चुकी हैं। ये पुस्तकें विश्वभर में प्रसिद्ध हैं, विशेषरूप से अमेरिका, यू.के., चीन, जापान, दक्षिण-कोरिया, ऑस्ट्रेलिया और भारत में इनके पाठकों की बड़ी संख्या है।

युवाल हरारी ने अपनी पुस्तक- 'होमो डेयस : ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टुमॉरो' में महर्षि दयानन्द के कार्य एवं विचारों का उल्लेख करते हुए निम्न प्रकार लिखा है-

" Meanwhile in India, Dayananda Saraswati headed a Hindu revival movement, whose basic principal was that the Vedic scriptures are never wrong. In 1875 he founded the Arya Samaj (Noble Society), dedicated to the spreading of Vedic knowledge- though truth be told. Dayananda often interpreted the Vedas in a surprisingly liberal way, supporting, for example, equal rights for women long before the idea became popular in the West."

" Dayananda, contemporary Pope Pius IX had much more conservative views about women, but shared Dayananda's admiration for super human authority...".

(Loc-4569-4574; page 272)

भावार्थ : ''इसी बीच, भारत में दयानन्द सरस्वती हिन्दू पुनर्जागरण आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे, जिसका मूल सिद्धान्त था कि धर्मशास्त्र कभी गलत नहीं होते। वर्ष १८७५ में उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की जो कि वैदिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार हेतु समर्पित है। सच कहा जाय तो दयानन्द अक्सर वेदों की व्याख्या आश्चर्यजनक रूप से उदार भाव में करते थे। उदाहरण के लिये, वह महिलाओं के लिये समान अधिकारों का समर्थन करते थे जो कि पश्चिमी देशों में इस विचार के लोकप्रिय होने से भी पूर्व की बात थी।

दयानन्द के समकालीन पोप पायस (नवाँ) महिलाओं के बारे में बहुत दकियानूसी विचार रखते थे किन्तु साथ ही वह दयानन्द द्वारा मानवेतर सत्ता की प्रशंसा से सहमत थे।''

आज महर्षि दयानन्द के इस देश में ही आर्यसमाजियों के अतिरिक्त अन्य कितने लोग हैं- उनके नाम और कार्य के बारे में जानने और समझने वाले। आज की युवा पीढ़ी तो उनके नाम से ही परिचित नहीं है। इस स्थिति में एक इजरायली इतिहासकार और प्रखर विद्वान् के द्वारा महर्षि के बारे में ऐसे सुन्दर और यथार्थ विचारों का उल्लेख अपनी पुस्तक में किया जाना दयानन्द के हम जैसे अनुयायियों के लिये अत्यन्त हर्ष और गर्व की बात है।

काश! हमारे देश में युवा पीढ़ी के लोगों में भी महर्षि दयानन्द के विचारों के प्रति रुचि जाग्रत हो सके और वे भी उस महामानव और महान् समाज-सुधारक द्वारा दिखाये मार्ग पर अग्रसर होकर समाज में शुचिता, संस्कार और सत्य की पुन: प्रतिष्ठा करने में सक्षम हो सकें। हमारी यह सदेच्छा और यह स्वप्न साकार हो यही परमपिता से प्रार्थना है।

जयपुर, राज.

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट

पुस्तक का नाम	**वास्तविक मूल्य रुपये**	**छूट के साथ मूल्य रुपये**
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
व्यवहारभानु:	२५	२०
महर्षि दयानन्द की आत्मकथा	३०	२०
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

संस्था समाचार

(१ से १५ फरवरी २०२१)

यज्ञ-प्रवचन : प्रतिदिन किया जाने वाला यह अनुष्ठान ऋषि उद्यान में निर्बाधित रूप से चल रहा है। प्रतिदिन प्रातः सायं यज्ञ एवं प्रातः यज्ञोपरान्त उपस्थित विद्वानों के प्रवचन। प्रवचन के क्रम में आचार्य घनश्याम जी, आचार्य श्यामलाल जी, गुरुकुल के व्यवस्थापक भ्राता प्रभाकर जी एवं भ्राता सोमेश जी ने विभिन्न विषयों पर विचार प्रकट किये। आचार्य घनश्याम जी ने 'गुरुवर स्वामी विरजानन्द दण्डी जी' के जीवन की चर्चाओं द्वारा प्रेरणा दी तथा उनके जीवन से मिलने वाली शिक्षाओं को उजागर किया। आचार्य श्यामलाल जी ने ईश्वर-आराधना के विषय में विभिन्न सूक्तों, उद्धरणों, दृष्टान्तों को देते हुए अपने विचारों को रखा। भ्राता प्रभाकर जी ने सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास (सृष्टि उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय) का दार्शनिक रूप में अध्यापन किया। भ्राता सोमेश जी ने 'महर्षि दयानन्द का राष्ट्रवाद' विषय पर अपना शोधपूर्ण वक्तृत्व दिया। विषय प्रतिपादन के अनुसार उनके व्याख्यान का सार-संक्षेपण कुछ इस प्रकार है- ''महर्षि दयानन्द राष्ट्रवादी धारणा के व्यक्ति थे। उनकी देशभक्ति चरमोत्कर्ष पर थी। वे प्रजातन्त्र के ही समर्थक थे। वे वंशवाद नहीं अपितु योग्यतावाद को उचित मानते थे। महर्षि दयानन्द के देशभक्त होने पर उनका विचार संकुचित था ऐसा मानना अनुचित है, क्योंकि वे विश्व कल्याण के पक्षधर थे। वे स्वराज्य तक ही सीमित नहीं थे, वे साम्राज्यवाद की भी बात करते थे, ताकि सम्पूर्ण विश्व में धर्म का शासन हो। प्रायः सत्याग्रह एवं असहयोग के नाम पर लोग श्री गांधी को याद करते हैं, परन्तु महर्षि दयानन्द के जीवन के हर क्षण में सत्याग्रह एवं असहयोग की भावना झलकती है।''

आर्यजनता के लिये इन व्याख्यानों को सुनना सुलभ कर दिया गया है। प्रतिदिन का यज्ञ एवं प्रवचन परोपकारिणी सभा के फेसबुक पेज एवं यू-ट्यूब चैनल पर ऋषि उद्यान से सीधा प्रसारित (live telecast) किया जाता है।

ब्र. रोहित, गुरुकुल ऋषि उद्यान, अजमेर।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है।

-सम्पादक

विद्या की प्रगति कैसे?

वर्णोच्चारण, व्यवहार की बुद्धि, पुरुषार्थ, धार्मिक विद्वानों का संग, विषय कथा-प्रसंग का त्याग, सुविचार से व्याख्या आदि शब्द, अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जानकर उत्तम क्रिया करके सर्वथा साक्षात् करता जाय। जिस-जिस विद्या के कारण जो-जो साधनरूप सत्यग्रन्थ है उन उनको पढ़कर वेदादि पढ़ने के योग्य ग्रन्थों के अर्थों को जानना आदि कर्म शीघ्र विद्वान् होने के साधन हैं।

(व्य. भा.)

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?
तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि ''**कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।**'' यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, उपनिषद्, वक्तृत्व कला तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास **नि:शुल्क** है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से २८ फरवरी २०२१ तक)

१. श्री पुष्पेन्द्र देव उपाध्याय, प्रतापगढ़ २. श्री माणकचन्द जैन, छोटी खाटु ३. श्री अशोक गुप्ता, दिल्ली

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(१६ से २८ फरवरी २०२१ तक)

१. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैन्ट २. श्री माणकचन्द जैन, छोटी खाटु ३. श्री हरसहाय सिंह गंगवार, बरेली ४. श्री कंवरपाल सिंह, नई दिल्ली ५. श्री वैद्य प्रेमदेव आर्य, चुरु ६. श्री बाबू सिंह राजपुरोहित, जोधपुर

अन्य प्रकल्पों हेतु सहयोग राशि

१. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैन्ट २. श्री चन्द्रसेन हरिसिंहघानी, अहमदाबाद ३. श्री अजयसिंह, सोनीपत ४. श्री मनोज आर्य, चरखीदादरी ५. श्री विश्म्बरदयाल पाटीदार, जयपुर ६. श्री पंकज दीवान, दिल्ली ७. श्री विपिन कुमार, दिल्ली

उन्नति का कारण

जो मनुष्य पक्षपाती होता है। वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्ष ग्रन्थों का पठन

महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और अन्य ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से ये पुस्तकें बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती हैं, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १००, १००० आदि।**

१५० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सबको उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४